द्वितीय अध्याय :
हिंदी नवजागरण और भारतेंदु युग

2.1 हिंदी नवजागरण और प्रेस

2.2 पत्रकारिता का योगदान

2.3 नया पाठक वर्ग

2.4 हिंदी समाज पर प्रभाव

अध्याय द्वितीयः

हिंदी नवजागरण और भारतेन्दु युग

2.1 हिन्दी नवजागरण और प्रेसः

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

प्रेस का संबंध समाचार पत्रों और पुस्तकों से रहा है। प्रेस के उदय से ही समाचार पत्र आम जन तक पहुँचा है। यद्यपि मध्यकाल में भी कहीं-कहीं पत्रकारिता के होने के का प्रमाण मिलता है परन्तु ये पत्र कहीं भी प्रकाशित नहीं होते थे, और न ही ये पत्र साधारण जनता के लिए उपलब्ध थे। ये पत्र राजदरबारों के उपयोग के लिए प्रकाशित किए जाते थे। इनके समाचार सीमित विषयों तथा शासकीय कार्य कलापों से संबंधित होते थे। मुगल शासन व्यवस्था में अलग विभाग 'समाचार संकलन एवं लेखन' होने की जानकारी मिलती है। इनमें वाक्यानवीस और अखबारनवीस आदि लेखकों की नियुक्ति की जाती थी। सामंत और स्वतंत्र राजाओं के यहाँ भी 'पारचानवीस' या 'अखबारनवीस' होते थे। इनका वेतन चार-पाँच रुपये मासिक होता था। ''अवध के बादशाह के यहाँ 660 अखबार नवीस होते थे। प्रकाशित समाचार पत्रों के यहाँ बादशाह का 'सिराज-उल-अखबार' प्रसिद्ध है। इन सब अखबारों में सत्य घटनाएँ ही लिखी जाती थी, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी वर्तमान ढंग के अखबारों के पहले इस तरह के अखबार थे।''[1]

प्रेस के उदय का मुख्य कारण धर्म माना जाता है। मूलतः धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए ही प्रेस की स्थापना हुई थी।

संसार में प्रेस का उदयः-

संसार में सर्वप्रथम चीनियों ने छापने का कार्य आरम्भ किया। ऐसा माना जाता है कि इनका पहला समाचार पत्र लगभग 2500 वर्षों तक चला। हमारे देश में यह

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.1

कला और छापने के यन्त्र पश्चिम से आए। यूरोप में भी प्रेस की स्थापना में धर्म मुख्य कारण रहा। ''इसी धर्म की प्रेरणा ने प्रेस और पत्र को भी जन्म दिया है। यूरोप में पहला प्रेस सन् 1440 ईसवी के मध्य में जर्मनी के मेअ वा मायन्स नगर में गॉटेनबुर्ग नाम के एक ईसाई ने खड़ा किया था। वह यह समझता था कि मैं बाइबिल छपा पाऊँ तो शाश्वत आनन्द प्राप्त करुँ। उसकी यह कामना मृत्यु से पहले 1456 में पूरी हुई। इसके कोई 21 वर्ष के अन्दर प्रेस इंग्लैंड पहुँचा। जहाँ कैक्सटन ने 1477 में अपना छापखाना खोला। इंग्लैंड में कैक्सटन ही छापखाने का जन्मदाता माना जाता है। इस घटना के एक सौ वर्ष बाद ईसाई प्रचारकों ने मलयालम और तमिल अक्षरों के प्रेस इस भारत भूमि में स्थापित किए।''[1]

प्राचीन काल में सर्वसाधारण जनता के लिए पत्र हस्तलिखित होते थे। इन्हें पढ़ने के लिए मूल्य (गजटा) देना पड़ता था। ई0पू0 60 में रोम में समाचार पत्रों का नियमित संग्रह जूलियस सीजर में 'एक्टाडार्यना' 'एक्टा सिनेटस' तथा 'एक्टा पब्लिक' के रुप में सरकारी घोषणाओं रोमन सीनेट और जनसाधारण को वित्त संबंधी जानकारी देने के लिए हस्तलिखित रूप में कराया था।''[2]

इन पत्रों की प्रतियाँ विशेष स्थानों पर चिपका दी जाती थी, और साधारण लोगों को इन्हें पढ़ने के लिए मूल्य देना पड़ता था। वेनिस नगर में भी 1556 ई0 में ऐसी पत्र के होने का का पता चलता है, जिन्हें पढ़ने के लिए मूल्य देना पड़ता था। आधुनिक प्रेस किसी एक राष्ट्र की देन नहीं है। यह बहुत से राष्ट्रों के विकास की लम्बी कहानी है। पहले जो समाचार पत्र निकाले जाते थे, उन्हें समाचार पत्रों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह बहुत ही छोटे आकार के थे। एक छोटे पर्चे के समान इसका आकार था। गुटेन्बर्ग ने भी 42 पंक्तियों में बाइबिल प्रकाशित करवा

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.2

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.75

तथा छोटे-छोटे पन्नों में पोप की आज्ञा को प्रकाशित करवाया। ''सबसे पहले समाचार पत्र यूरोप महाद्वीप के देशों में निकले। पहले पहल हालैण्ड में 1526 में पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। इसके बाद 1610 में जर्मनी में, 1622 में इंग्लैंड में, 1690 में अमेरिका में, 1703 में रूस में और 1737 में फ्रांस में पहला पत्र निकला। जो पहला साप्ताहिक समाचार पत्र 21 सितम्बर, 1622 को इंग्लैंड में निकला था, उसका नाम 'पोस्टमैन' था। इसके 80 वर्ष बाद लण्डन से 11 मार्च 1702 को पहला दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ जिसका नाम 'डेली करेण्ट' था।''[1]

प्रेस का उदय (भारत) :

भारत में पहला समाचार पत्र 1780 में निकला। यह पत्र कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। यह 'इण्डिया गैजेट' और कैलकता पब्लिक 'ऐडवरटाइजर' के नाम से प्रकाशित हुआ और 40 वर्ष बाद दैनिक 'बंगल हरकारा' में मिल गया।

1866 में बैरिस्टर ग्रैहम ने 'इण्डियन डेली न्यूज' के नाम पत्र निकाला। इस पत्र की सहानुभूति भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से रही। अन्त में 1923 में देशबन्धु चितरंजन दास ने ग्रैहम साहब से इसे खरीद कर 'फॉरवर्ड' नाम से दैनिक पत्र के रूप में इसे निकाला। भारत में प्रेस की स्थापना का मुख्य कारण धार्मिक रहा है। ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बम्बई, तमिलनाडु, कलकत्ता, विपिन कोटा आदि में प्रेस की स्थापना करवाई। नागरी लिपि के टाइप हुगली के विलिकन्स तथा पंचानन कर्मकार के प्रयास के फलस्वरूप विकसित हुए।

पुर्तगालियों के प्रयत्नः-

यद्यपि पुर्तगाली अंग्रेजों से बहुत पहले भारत में व्यापार करने आए थे। बहुत से भू-भागों पर अंग्रेजों के जाने के बाद भी राज करते रहे। पुर्तगाली 'वास्को-डी-गामा' को अरब नाविक 'इब्रे मजिद' ने नशे की हालत में भारत का रास्ता

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.4

बताया था। परन्तु पुर्तगाली अपनी धर्मान्धता के कारण अपने धर्म का प्रसार-प्रचार न कर सके। इन्होंने आते ही हिन्दू धर्म को तहस-नहस करने का प्रयास किया। देश के कई भागों में इन्होंनें हिन्दुओं की मूर्तियाँ तोड़ी। इसके विपरीत ईसाई मिश्नरियों ने धर्म को प्रचारित करने के लिए यूरोप से दो प्रेस मंगवाएँ। जो 1550 में भारत पहुँचे।

''पहला प्रेस गोआ में खड़ा हुआ। सन् 1557 से पहले इसमें क्या छपा यह तो मालूम नहीं, पर इस वर्ष पहली ईसाई पुस्तक पहले-पहल इस देश की भाषा में प्रकाशित हुई। यह कार्य मराठी या गोआनी में नहीं हुआ, बल्कि मलयालम भाषा में हुआ। दूसरा प्रेस तमिलनाडु के तिनेवेली में स्थापित किया गया। यह 1578 की बात है। सन् 1602 में मलाबार के विपिन कोटा में पादरियों ने तीसरा प्रेस खड़ा किया। सन् 1616 में अंग्रेज इस देश में पहुँचे थे तब बम्बई के पोर्चुगीजो ने वहाँ एक प्रेस स्थापित किया था।''[1]

1679 ई0 में पोर्चुगीजों द्वारा दक्षिण के अम्बल कांड में प्रेस की स्थापना का पता चला जिससे कोचीन तमिल शब्दकोश प्रकाशित हुआ। 1696 में फ्रांसिसी 'डी-सोजा' ने पुर्तगाली भाषा में एक पुस्तक छपवाई जिसका नाम था 'ईशु खीष्ट द्वारा पूर्व की विजय'। ''ईसाई पादरियों से उत्साहित और प्रेरित होकर कुछ भारतीयों ने अपने धर्म ग्रंथ मुद्रित और प्रकाशित करने का साहस किया। काठियावाड़ के 'भीम जी पारख' ने 1662 में बम्बई में छापखाना स्थापित किया।''[2] इसके लिए उन्होंने मुद्रण विशेषज्ञ 'हेनरी बालेस' को इंग्लैण्ड से बुलवाया। 1712 में ब्रिटिश भारत के तनजोर जिले में डेनमार्क के पादरियों द्वारा प्रेस खोलने का पता चला। पहले इसमें रोमन टाइप में छपाई होती थी परन्तु बाद में जर्मनी से तमिल टाइप मंगाए गए और 1714 में ईसाईयों की न्यू संहिता तमिल अक्षरों में छपी। ये सभी प्रयत्न पुर्तगाली पादरियों द्वारा किए गए।

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.6-7
2 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिंदी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.16

अंग्रेजों द्वारा प्रेस की स्थापना के प्रयत्नः-

अंग्रेजों द्वारा भी प्रेस की स्थापना के विषय में कुछ प्रयत्न किए गए। सन् 1674 में 'हेनरी मिल्स' नामक व्यक्ति को कोर्ट आव डायरेक्टर्स ने एक प्रेस, टाइप और कागज देकर बम्बई के लिए रवाना किया गया। परन्तु वह प्रयास सफल नहीं हो सका। ''1772 में मद्रास में एक छापखाना चल रहा था और 1779 में कलकत्ता में भी एक सरकारी प्रेस स्थापित था। यह चार्ल्स विलकिन्स के प्रबन्धाधीन था।''[1] विलकिन्स ने ही पंचानन नामक कारीगर को टाइप का साँचा बनाने का काम सिखाया था।

''भारत भूमि में पत्रकारिता का ऐतिहासिक प्रारम्भ कम्पनी से असन्तुष्ट स्वतन्त्र व्यापारी अंग्रेजों द्वारा हुआ। इस दिशा में पहला असफल प्रयत्न विलियम बोल्ट नामक व्यापारी ने (1768) समाचार पत्र प्रकाशन के लिए कलकत्ता के सार्वजनिक स्थलों पर नोटिस लगा कर दिया।''[2] डच जातीय विलियम बोल्ट कम्पनी का नौकर था। इसलिए उसे कलकत्ता से मद्रास और मद्रास से यूरोप जाना पड़ा। परन्तु जाते-जाते वह सूचित कर गया कि यदि कोई कलकत्ता में अखबार निकालना चाहे तो मैं प्रेस का सामान उपलब्ध करा सकता हूँ। इसके 12 वर्ष पश्चात् 29 जनवरी, 1780 ई0 को 'जेम्स आगस्त हिके' ने भारत का पहला अंग्रेजी समाचार पत्र 'बेंगाल गजट आव कैलकेटा जेनरल एडवरटाईजर' या 'हिके गजट' प्रकाशित किया।

हिके गजटः-

'हिके गजट' भारत भूमि का प्रथम अंग्रेजी समाचार पत्र था। 'हिके' के प्रथम पत्र से ही स्वाधीन चेतना का संकेत मिलता है। यह पत्र आकार में छोटा था परन्तु निर्भीक था। ''हिकी ने निर्भयतापूर्वक अपने पत्र में ज्ञान-कम्पनी के प्रशासन और

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सन्त कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005. पृ.8

2 उद्धृत डा. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ.77

भारत में बसे तत्कालीन अंग्रेज महाप्रभुओं की भष्ट्रता का पर्दाफाश किया। 'बंगाल गजट' दो पृष्ठ का मामूली सा पत्र था- 12 इंच लंबा और 8 इंच चौडा तथा दोनों और तीन कॉलम की छपाई।..... इसका विशेष स्तंभ 'ए पोयट्स कार्नर' हिकी स्वयं लिखता था। उसमें वह कलकत्ता में बसे अंग्रेज महाप्रभुओं के प्रति लोगों में प्रचलित चर्चाओं को उछालता था। हिकी ने तत्कालीन गवर्नर वारने हेस्टिंग्स को भी नहीं बख्शा। उसके आपत्तिजनक और खिल्ली उड़ाने वाले लेखन का परिणाम यह हुआ कि सरकार ने सबसे पहले पोस्ट ऑफिस में 'बंगाल गजट' को रोक लिया। बाद में हिकी को गिरफ्तार कर जेल में ड़ाल दिया तथा उसके पत्र को बन्द कर दिया।''[1]

प्रारम्भिक अंग्रेजी पत्रकारिता का उद्देश्य अंग्रेज सम्पादकों-प्रकाशकों द्वारा अंग्रेज व्यापारी पाठकों के मनोरंजन और जानकारी देना ही था। सामान्य भारतीय जनता का न तो इन पत्रों से कोई सम्पर्क था और न ही ये पत्र उनके हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। भारतीयों के लिए इनका कोई महत्त्व नहीं था। इनका ऐतिहासिक महत्त्व सिर्फ इतना है कि इन्होंने भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के लिए नींव और ढाँचे का निर्माण किया। एक स्वाधीन संघर्ष परम्परा का सूत्रपात किया।

2.2 पत्रकारिता का योगदानः

'हिके गजट' के समय से ही पत्रकारिता का श्रीगणेश हो चुका था। नवम्बर 1780 में ही कलकत्ता से दूसरा पत्र 'इण्डिया गैजेट' निकला। इसके बाद फरवरी 1784 में 'कैलकता गैजेट' निकला। इसके बाद चौथा पत्र फरवरी 1785 में 'बेंगाल जनरल' के नाम से निकला। अंग्रेजी पत्रों का यह सिलसिला बिना रुके चलता रहा। प्रायः 10 वर्षों में लगभग 15 पत्र निकले लेकिन सभी अंग्रेजी भाषा में ही थे। सन् 1817 तक सभी पत्र अंग्रेजी में ही निकले।

---

1 (सं.) वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ.29

पहला उर्दू पत्रः-

पहला उर्दू पत्र कलकत्ता से 1822 से पूर्व निकला। फारसी पत्र 'जामे जहांनुमा' पहले उर्दू में निकला था। यह पत्र कलकत्ता से हिंदी पत्रों से पहले निकला। ''फारसी में 'जामे जहांनुमा' नाम का यह पत्र हरिहर दत्त ने मार्च 1822 में निकाला था। कहते हैं कि पहले यह पत्र उर्दू में निकला था, पर जब नहीं चला, तब इसके साथ फारसी भी कर दिया गया और अन्त में यह केवल फारसी में कर दिया गया।''[1] परन्तु बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों के इतिहास' में लिखा है कि- ''सन् 1833 ई0 में उर्दू का पहला अखबार दिल्ली में जारी हुआ। उसका नाम मालूम नहीं क्या था।''[2] सैयदुल अखबार नाम का उर्दू अखबार सर सैय्यद अहमद के भाई मुहम्मद खाँ ने निकाला।

इसके बाद 1838 में 'देहली अखबार', 1850 में कोहेनूर (मुंशी हर सुखराय) 1859 में अवध अखबार, अखबारे आम, अवध पंच, हिन्दुस्तानी पैसा अखबार, अखबारे चुनार, मखजन जमाना आदि। इनमें से बहुत से पत्र राजनीतिक थे जैसे- अवध पंच, हिन्दुस्तानी, अखबारे आम, जमाना, अखबारे चुनार आदि कुछ रिसायतों के पत्र जो उर्दू और हिंदी में साथ-साथ निकले थे जैसे- ग्वालियर गजट, जोधपुर गजट, जयपुर गजट आदि। कुछ उर्दू पत्र धर्म संबंधी रहे हैं जैसे- झज्जर से निकलने वाला 'भारत प्रताप' जोकि पंडित विश्वंभर दयालु का पत्र था।

पहला फारसी पत्रः-

राजाराम मोहन राय जब इंग्लैंड से लौटे तो इनका सामाजिक बहिष्कार हो चुका था। जब समाज में इनका स्थान नहीं रहा तो इन्होंने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। हिन्दू कर्मकाण्डों का विरोध करने के लिए इन्होंने यह कदम उठाया। अपने

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.42-43

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखकः बालमुकुन्द गुप्त) उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.13

विचारों को देश भर में फैलाने के लिए फारसी में पहला अखबार 'मीरात-उल-अखबार' निकाला।

पहला प्रान्तीय (देशी) पत्रः-

सन् 1817 तक सभी पत्र अंग्रेजी में निकले। 1817 में ही बांग्ला भाषा में 'दिग्दर्शन' सीरामपुर के बैपटिस्ट-मिश्नरियों ने निकाला। इनका मूल उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करना था। इसी वर्ष कलकत्ता से 'बेंगाल ग्याजेट' और सीरामपुर से 'समाचार दर्पण' भी बंगला में निकला। 'दिग्दर्शन' के सम्पादक-प्रकाशन अंग्रेज थे। परन्तु 'बेंगाल ग्याजेट' बंगाली सम्पादक और प्रकाशकों द्वारा ही निकाला गया था। यह पत्र राजाराम मोहन राय की प्रेरणा से निकला था। 1820 में संवाद कौमुदी (बंगला) में निकला जो राजाराम मोहन राय के मित्र ताराचन्द दत्त और भवानी चरण बैनर्जी ने निकाला। मिश्नरी पत्र 'समाचार दर्पण' के विरोध में राजा साहब ने 'ब्रहैनिकल मैग्जीन' निकाली जोकि अंग्रेजी और बंगला दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती थी।

पहला हिंदी पत्रः-

प्रथम हिन्दी पत्र से ही समाचार पत्रों की नीति का पता चल जाता है। शंभुनाथ ने लिखा है, ''हिन्दी का समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' (30 मई, 1826) है। इसका अर्थ है 'समाचार का सूर्य' यह अखबार 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु' निकला था, हिन्दुओं के हित के हेतु नहीं।..... इसके पहले अंक में जातीय आह्वान है 'सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ें और समझ लें और पराई अपेक्षा न करें, और अपनी बात की उपज न छोड़ें' हम देख सकते हैं कि यहाँ 'हिन्दू' लोगों की बात नहीं है। हिन्दी का संबंध मजहब से नहीं है।''[1] हिंदी का प्रथम पत्र 'उदन्तमार्तण्ड' जोकि 30 मई 1826 को 'पंडित युगल किशोर शुक्ल' ने कलकत्ता से प्रकाशित किया था। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों ने अन्य पत्रों को हिंदी का प्रथम पत्र माना है। महादेव साहा और जे.एच. आनन्द ने अपने शोध ग्रन्थ 'पाश्चात्य विद्वानों

---

1 शंभुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिन्दी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.17

का साहित्य' में 'उदन्त मार्तण्ड' को हिंदी का प्रथम पत्र न मानकर मिश्नरी पत्र 'दिग्दर्शन' और 'गास्पल मैग्जीन' को पहला हिंदी पत्र माना है। दिग्दर्शन के बारे में डॉ. रमेश कुमार जैन ने लिखा है, ''1 अप्रैल, 1818 से मार्च, 1819 और जनवरी से अप्रैल, 1820 तक इस मासिक के कुल 16 अंक अंग्रेजी व बंगला भाषा में प्रकाशित हुए। इसके तीन अंक हिन्दी में निकाले गये। इस तरह दिग्दर्शन बंगला का पहला पत्र होने के साथ ही हिन्दी का भी पहला पत्र था।''[1]

पहले यह पत्र अंग्रेजी और बंगला में निकले थे, परन्तु बाद में हिंदी में निकले। डॉ. जेनरी आनन्द ने भी हिंदी का प्रथम पत्र 'दिग्दर्शन' (1818) तथा 'गास्पल मैग्जीन' (1820) को माना है। उनके अनुसार 'गास्पल मैग्जीन' मिश्नरी पत्रिका का प्रकाशन कलकत्ता में 'बंगाल ओग्सलरी मिश्नरी सोसाइटी' (बी.ए.एम.एस.) संस्था ने दिसम्बर 1819 में अंग्रेजी-बांग्ला में स्कूल प्रेस से किया था।''[2] इसके बाद अंग्रेजी संस्करण बंद करके हिंदी संस्करण निकाले गए थे।

इसके अतिरिक्त बूंदी से प्रकाशित पत्र 'दरबार-रोज-नामचा' (1818-20) को भी संदिग्ध दृष्टि से प्रथम हिंदी पत्र माना गया है। परन्तु इस पत्र की भाषा और प्रकाशित काल की कोई सूचना नहीं है। इसी प्रकार 'दिग्दर्शन' की भी कोई प्रमाणिक प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई है। 'लार्ड मेटकॉफ' पत्रकारिता के लिए मसीहा बनकर आए। उनकी उदार नीतियों ने समाचार पत्रों के दायरे को बढ़ाया। ''मैटकॉफ के समय (सन् 1835) से समाचार पत्रों की स्वतंत्रता का युग आरंभ हुआ और 1857 की क्रांति तक बिना किसी हस्तक्षेप के चलता रहा।''[3]

---

1 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.103
2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.81
3 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.25

1850 के बाद की पत्रकारिताः-

1857 की क्रान्ति का पत्रकारिता पर विशेष प्रभाव पड़ा। बहुत से पत्र-पत्रिकाओं ने अंग्रेजी सरकार की नीतियों का भांडाफोड किया। 13 जून 1857 को लॉर्ड कैनिंग द्वारा भारत के पत्रों से उत्तेजना को रोकने के लिए 'एडम एक्ट' लगा दिया, जो गलाघोंटू कानून के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 1857 के विद्रोह को समाचार पत्रों ने लोगों के बीच फैलाया था, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न कानून लगाकर पत्रों के स्वाभाविक विकास को रोकने का प्रयास किया। जून, 1857 में लार्ड कैनिंग ने एक वर्ष के लिए एक कानून लगाया जिसे गलाघोंटू कानून का नाम दिया गया। डॉ. रमेश कुमार जैन का कहना है, ''लॉर्ड केनिंग का प्रेस एक्ट, 1857 गलाघोंटू कानून (ळंहहपदह ।बज) के नाम से प्रसिद्ध है। इस एक्ट के माध्यम से सरकार किसी भी समाचार पत्र, पुस्तक या अन्य मुद्रित सामग्री के प्रकाशन या प्रसार को प्रतिबंधित कर सकती थी। यह एक्ट भारतीय और अंग्रेजी भाषा के पत्रों पर समान रूप से लागू किया गया था। इस कानून में प्रकाशक तथा मुद्रक का नाम एवं प्रकाशन स्थल का पता प्रकाशित करना भी अनिवार्य कर दिया गया।''[1]

इसके बावजूद भी बहुत से पत्रों का प्रकाशन हुआ। जिसमें से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का बंगला में सोमप्रकाश, टाइम्स ऑफ इण्डिया (अ0) 1857 में बम्बई से, 1865 में इलाहाबाद से पायोनियर (अ0) आदि मुख्य थे। सन् 1868 में अमृतबाजार (जेसोर जिले, कलकत्ता) से अमृतबाजार पत्रिका शिशिर कुमार घोष ने निकाली। यह अंग्रेजी और बांग्ला दोनों में निकलती थी। 1867 में गिरिशचन्द्र घोष ने 'बंगाली' नाम का पत्र अंग्रेजी में निकला। इन्हीं की चर्चा करते हुए किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं- ''उन दिनों बंगालियों के अंगरेजी में दो ही दैनिक पत्र 'अमृतबाजार पत्रिका' और

---

1 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.26

बंगाली थे पर सरकार की ऐसी आलोचना करते थे कि शासक मण्डल में घबराहट फैल जाती थी।''[1]

अमृत बाजार पत्रिका ने समय-समय पर देशी राजाओं का पक्ष लिया। कलकत्ता के जमींदार राजा इन्द्रचन्द्र सिंह की सहायता से अंग्रेजी का 'स्टेटमैन' निकला। यह राजनीतिक पत्र था। 'सुलभ समाचार' नाम का सस्ता अखबार 1870 में ब्रह्म समाज के नेता केशवचन्द्र सेन ने निकाला। इसके अतिरिक्त 'बंगदर्शन' बंकिमचन्द्र चटर्जी ने, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'साधना', द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ने 'भारती' आदि बांग्ला में निकाले।

बनारस अखबार हिंदी प्रदेश का पहला साप्ताहिक पत्र था। यह पत्र सन् 1845 में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने बनारस से निकाला था। इसमें उर्दू, देवनागरी लिपि में लिखी होती थी। इस पत्र के माध्यम से राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का उद्देश्य आम भाषा को राज-काज की भाषा बनाना था। हिंदी जनसामान्य की भाषा के साथ-साथ कचहरियों और अदालतों की भाषा बने। इस पत्र ने द्विभाषी पत्रों का दौर चलाया। आगे चलकर ऐसे बहुत से पत्र निकले जो दो या तीन भाषाओं में थे। बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है- 'ग्वालियर से 'ग्वालियर गजट' उर्दू-हिंदी में निकलता था पर अब वहाँ से उर्दू उठ गयी है, इससे वह पत्र हिंदी में निकलता है। इसी प्रकार जयपुर से 'जयपुर गजट' उर्दू-हिंदी में निकलता था, और जोधपुर से 'जोधपुर गजट' उर्दू-हिंदी ही में निकलता था जो अब अंगरेजी और हिंदी में निकलता है।''[2]

इन द्विभाषी पत्रों ने भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया। भाषा के क्षेत्र में यह जागरण नया था, जो भाषाएँ अब तक सुप्त पड़ी थी, वह जागृत हो चली थी। इसी तरह अन्य समाचार पत्र, हिंदी भाषी क्षेत्र से दो या दो से अधिक भाषाओं में निकले जैसे- ग्वालियर बजट, पयामे आजादी, समाचार सुधावर्षण आदि।

---

1 अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.74

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखक- बालमुकुन्द गुप्त), उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.52

''हिंदी-उर्दू दोनों ही उस समय हिंदू-मुसलमान जनता की संपर्क भाषाएँ थी। दोनों भाषाओं में तब तक धर्म के आधार पर सांप्रदायिक विभाजन और अलग-अलग स्पष्ट पहचान नहीं बनी थी। हिंदू-मुसलमान दोनों ही हिंदी-उर्दू पत्रों का संपादन तथा प्रकाशन करते थे। वे समझते थे कि हिंदी-उर्दू में से किसी एक भाषा की उपेक्षा करके उनकी पत्र-पत्रिकाएँ जीवित नहीं रह सकती है।''[1]

सन् 1868 में भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' निकाली। हिंदी के योगदान में भारतेन्दु के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। आरम्भ में इसमें कवियों की कविताओं का संग्रह प्रकाशित होता था और अन्य भाषाओं में कृतियों का हिंदी अनुवाद छपता था। परन्तु बाद में राजनीति, समाजनीति आदि पर लेख छपे। ''वह समय अंगरेज अधिकारियों के सामने हाथ जोडे खडे रहने का था। जब उक्त पत्र पाक्षिक होकर राजनीति सम्बन्धी और दूसरे लेख स्वाधीनता भाव से लिखने लगा तो बड़ा आन्दोलन मचा। यद्यपि हिंदी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि कवि वचन सुधा के हर नंबर के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था।''[2]

1873 में भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' और 1874 में स्त्रियों के लिए 'बालोबोधिनी' निकाली। इन्होंने जन-साधारण के दुःख-सुख को पत्रकारिता से जोड़ा। ''इस पत्रिका ने अंध-रुढिवादिता, औपनिवेशिक साम्राज्यवाद तथा सामंती संस्कृति के विरुद्ध कभी खुल्लम-खुल्ला, कभी राजभक्ति की चाश्नी में भिगोकर, रोषपूर्ण व्यंग्यात्मक तेवर दिखलाए थे। फलतः इस सजग राष्ट्रीय पत्रिका की भी 100 प्रतियाँ सरकार ने लेनी बंद कर दी थी।''[3]

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.92
2 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.129
3 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.101

इस जागरण के दौर में पत्रकारिता के विषय राष्ट्रीय सामाजिक और सांस्कृतिक होते थे। ''उदाहरण स्वरुप इस काल में नारी-वर्ग के लिए जहाँ 'बालोबोधिनी' 'भारतभगिनी', 'सुगृहिणी', 'वनिता हितैषी' आदि प्रकाशित हुई, वहीं न्याय, नृत्य, नाट्य, कृषि, वाणिज्य, कविता, स्वदेशी वस्तु विचार तथा बालकों के लिए पृथक-पृथक पत्र प्रकाशित किये जाने लगे थे।''[1]

इसी उद्देश्य को लेकर अन्य पत्र-पत्रिकाएँ भी निकली, इसी बात का समर्थन करते हुए पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने कहा है- ''1872 से सार्वजनिक पत्रों की बाढ़ सी आयी। पहला पत्र अल्मोड़ा समाचार था।''[2] ''हिंदी दीप्तिप्रकाश कलकत्ते से 1872 में बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने निकाला था''[3] बिहारबन्धु के बारे में वाजपेयी ने लिखा है- ''यह साप्ताहिक पत्र भी कलकत्ते से ही निकला था।''[4]

नागरी अक्षरों का प्रचार करने के लिए नागरी प्रकाश, मेरठ से प्रकाशित हुआ। ''हिंदी प्रदीप विक्टोरिया प्रेस प्रयाग में छपता था।''[5]

ये सभी पत्र किसी न किसी उद्देश्य को लेकर निकाले गए थे। केवल धन कमाना ही इनका उद्देश्य नहीं था। इसी बात को इंगित करते हुए हिंदी प्रदीप ने कहा था- ''हमें अपने लेख द्वारा धन की आकांक्षा नहीं है, न ही पत्रों का 'सरकुलेशन' पाठकों की संख्या बढ़ी हुई चाहते हैं, न खून लगाए शहीदों में दाखिल होने की भांति हम नाम चाहते हैं कि बड़े लिक्खाडों में हमारी गिनती हो, न हमसे खुशामद चुनाचुनी और मिथ्या प्रशंसा की जाती है, तब कोरी कलम की कारीगरी से कौन रीझे।''[6]

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.111
2 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.135
3 वहीं, पृ.141
4 वहीं, पृ.141
5 वहीं, पृ.140
6 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.114

इस काल तक लोगों में हिंदी प्रेम की भावना आ चुकी थी। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के समक्ष हिंदी भाषा को स्थान दिलाना मुख्य मुद्दा था। जागरण का एक अन्य पहलू राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दे थे, जिन्हें हिंदी पत्रकारिता झकझोर रही थी। इन्हीं लक्ष्यों को लेकर कलकत्ता जैसे अहिंदी भाषी प्रदेश से हिंदी के बढ़िया अखबार निकले। कलकत्ता से 'हिंदी बंगवासी', 'आर्यावर्त', 'उचित वक्ता', 'भारत मित्र' आदि कई प्रसिद्ध पत्र निकले।''[1]

उस समय के अन्य मुख्य पत्रों में हिन्दोस्थान (काला काँकर), सारसुधानिधि (कलकत्ता), राजस्थान समाचार (अजमेर), ब्राह्मण (कानपुर), नागरी नीरद, नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), भारत भगिनी, श्री वेंकेटश्वर समाचार (बम्बई), सरस्वती (इलाहाबाद) आदि थे। इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी की जी-जान से सेवा की। इनके योगदान को रेखांकित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है- ''यह सुहृदय भाव और सहयोग की भावना उस युग की विशेषता थी। साहित्यिक लड़ाई-झगड़े तब भी होते थे, परन्तु उनके पीछे हिंदी सेवा की आकांक्षा थी। व्यक्तिगत आक्षेप और ईर्ष्या का प्रायः अभाव था।''[2]

कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र जो निकलते तो थे देशी रजवाडों से, परन्तु अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कड़ा लिखते थे जैसे- ''जयपुरगजट, मारवाड़ गजट, सज्जन कार्ति सुधाकर, ग्वालियर गजट आदि। देशी राज्यों में अनेक कठनाईयों के होते हुए भी इन पत्रों ने देश और भाषा की जो सेवा की, वह अनुपम है।''[3]

इस दौर के पत्रों की मुख्य विशेषता यह रही है कि ये किसी जाति-विशेष धर्म समुदाय से बंधे नहीं थे। यद्यपि जाति-विशेष, धर्म सभाओं, आर्य समाज, सनातन

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.25

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.26

3 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.28

धर्मियों, ब्रह्मसमाजियों के पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी कम नहीं थी। ''परिणाम या संख्या में ही नहीं गुणवत्ता और श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से भी इस युग की पत्रकारिता गौरव की अधिकारिणी है। विवेच्य पत्र-पत्रिकाओं में युगीन राष्ट्रीय नवचेतना और अन्तर्विरोध कभी खुलकर और कभी राजभक्ति की आड़ में छिपकर व्यक्त हुए हैं।''[1]

इस काल की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ अल्पजीवी रही। सीमित साधन, लोगों को हिंदी की बजाय अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के लगाव के कारण, अंग्रेजी राज द्वारा विभिन्न एक्ट प्रेस की स्वतन्त्रता पर लगाया जाना इनके अल्पजीवी होने का मुख्य कारण बना।

सन् 1900 के बाद जो मुख्य पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई उनमें से जयपुर से समालोचक (चन्द्रघर शर्मा गुलेरी), सिपाही, हितवार्ता (स्त्रियों के लिए), अबला हितकारक, अभ्युदय, हिन्द केसरी (लोकमान्य तिलक), नृसिंह (किशोरीदास वाजपेयी), वीर भारत, भारतोदय, चाँद, उषा, गृहलक्ष्मी, स्त्रीधर्म शिक्षक, प्रताप (गणेश शंकर विद्यार्थी) भारतमहिला, नवजीवन, प्रभा प्रियवंदा आदि मुख्य थी।

वह दौर मासिक पत्रों का था। दैनिक पत्रों तक पहुँचने में पत्र-पत्रिकाओं को बहुत समय लग जाता था। ग्राहक संख्या के हिसाब से पत्र का भाग्य तय होता था। मासिक, अर्द्धमासिक, साप्ताहिक, अर्द्धसाप्ताहिक और उसके बाद दैनिक होने का क्रम आता था। अधिकतर प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाएँ दो भाषाओं उर्दू-हिंदी में निकलती थी। जो संस्करण हिंदी में निकलता था वही उर्दू में भी निकलता था। इसी तरह अन्य भाषाओं के साथ भी था जैसे बंगला, अंग्रेजी आदि। ''वस्तुतः पत्र-पत्रिकाएँ उस समय केवल विलास या शुद्ध मनोरंजन का साधन नहीं था। वे पाठकों के हित व समाज-सुधार, जन-जागृति वाली, ज्ञानवर्धक सामग्री को सर्वोपरि महत्त्व देती थी।''[2]

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.138
2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.119

दैनिक समाचार पत्रः-

"समाचार सुधावर्षण हिंदी सबसे पहला दैनिक पत्र कहा जा सकता है, यद्यपि यह हिंदी और बंगला दो भाषाओं में कलकत्ते से प्रकाशित होता था और इसके सम्पादक और प्रकाशक बंगाली सज्जन ही थे।"[1]

उस युग में दैनिक पत्र बहुत ही कम निकलते थे। हिंदी का प्रथम दैनिक समाचार पत्र समाचार सुधावर्षण है जोकि 1854 में कलकत्ता से हिंदी और बंगला दोनों में निकला था। यह बाबू श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इस पत्र के अधिक भाग में हिंदी रहती थी और आधे से कम में बंगला। हिंदी पहले के पृष्ठों पर रहती थी और समाचार और सम्पादकीय लेख आदि हिंदी में रहते थी। बंगला भाग में व्यापार समाचार विज्ञापन दर आदि रहते थे। यह अहिंदी भाषियों द्वारा हिंदी का प्रथम दैनिक है।

दूसरा दैनिक पत्र हिन्दोस्थानः-

यह पत्र 1883 से 1885 तक हिंदी और अंग्रेजी में लंदन से प्रकाशित होता रहा। इसके बीच में उर्दू भी शामिल कर दी गई। सन् 1885 में कालाकंकर के राजा रामपाल सिंह ने इस पत्र को कालाकंकर से ही दैनिक कर दिया। 1891 से प्रति रविवार को अंग्रेजी संस्करण निकलने लगा। जो आगे चलकर प्रति सप्ताह दो अंक हो गए और चार अंक हिंदी में निकलने लगे।

यह पत्र सुधार कार्यों का पक्षपाती था। आरम्भ में कांग्रेस का समर्थक था, परन्तु अंत में कांग्रेस के विरुद्ध अपना मत प्रकट करता था। प्रतापनारायण मिश्र की 'ब्रैडला स्वागत' इसी पत्र में छपी थी। जिसका अनुवाद करके लंदन के अखबार में छपवाया गया। इस पत्र ने हिंदी भाषा का खुल्लम-खुल्ला पक्ष लिया। लंदन से यह हिंदी में प्रकाशित होता रहा। यह स्वभाषा के प्रति नया जागरण था, जो धीरे-धीरे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जन-सामान्य में फैल रहा था। अधिक से अधिक सप्ताह

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.328

के 3 या 4 दिन उसे ही दैनिक माना जाता था। इस पत्र के बारे में पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी का कहना था कि- ''एक बात में इस पत्र की नीति सदा स्थिर रही और वह है हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि की हिमायत।''[1] यह पत्र राजा रामपाल सिंह का था जो अंग्रेजी ढंग से सुधार चाहते थे। इस पत्र के बारे में 'बाल मुकुन्द गुप्त' ने कहा है- ''राजनीति की भांति समाजनीति तथा और कई बातों में हिन्दोस्थान की राय इस देशवालों की राय से नहीं मिलती। वह सुधारक पत्र है और सुधार ठीक अंगरेजी ढंग पर चाहता है। अंगरेजी चाल उसे बहुत ही पसंद है, अंगरेजी अनुकरण उसे बहुत ही पसंद है।''[2]

दैनिक पत्र भारतोदयः-

'''भारतोदय' नाम का दैनिक पत्र भी सन् 1885 में ही कानपुर से निकला था। इसके सम्पादक और प्रकाशक सीताराम नामक गृहस्थ थे।''[3]

दैनिक पत्र सिपाही-ः-

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि 'भारतोदय' के सम्पादक 'सीताराम' ने ही सन् 1903 में दैनिक पत्र 'सिपाही' निकाला परन्तु 'भारतोदय' और 'सिपाही' दोनों ही आर्थिक अभाव के कारण बंद हो गए।

राजस्थान समाचारः-

1889 में अजमेर से 'मुंशी समर्थदान' ने साप्ताहिक पत्र 'राजस्थान समाचार' निकाला। 1894 में अर्द्धसाप्ताहिक हुआ, 1904 में दैनिक हुआ। इस पत्र पर आर्यसमाज का प्रभाव दिखाई देता था। इस पत्र के बारे में 'बाल मुकुन्द गुप्त' लिखते हैं- ''दैनिक होने के बाद से उसके लेखों का ढंग कुछ बदल गया है। पहले की अपेक्षा कुछ स्वाधीनता उसमें आ गई है। रजवाडों के मामलों में किसी-किसी बात पर

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.331

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखक- बालमुकुन्द गुप्त), उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.82

3 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.331

कभी-कभी वह कुछ बोलने भी लगा है।''[1] कुछ दिनों के पश्चात् अनवरत घाटे के बावजूद यह पत्र बंद हो गया।

दैनिक पत्र सम्राटः-

राजा रामपाल सिंह ने 'हिन्दोस्थान' के बंद होने पर नया पत्र निकालने की सोची। 'हिन्दोस्थान' अपनी देशप्रीति के कारण बंद हुआ था। इसलिए इसी धारणा को लेकर राजा साहब ने नया पत्र निकाला। 'हिन्दोस्थान' के बंद हो जाने पर सन् 1907 में 'सम्राट' नाम से द्वि-मासिक, साप्ताहिक और दैनिक संस्करण निकले।''[2]

दैनिक पत्र भारतमित्रः-

हिंदी नवजागरण में कलकत्ता के तीन मुख्य पत्रों का योगदान रहा है। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार- ''इस युग में कलकत्ते से तीन प्रमुख पत्र निकले- 'भारतमित्र' (1878), 'सारसुधानिधि' (1879) और 'उचितवक्ता' (1880), इन तीनों पत्रों के मूल प्रेरक और संचालक पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र थे।''[3] इन पत्रों ने प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी राजनीतिक तेजस्विता के दीप जलाए रखे। '' 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता' आदि पत्रों में अखिल भारतीय महत्त्व के प्रश्नों पर बहुत ध्यान दिया और अपने को केवल कलकत्ता का ही पत्र नहीं माना।''[4] इनके सम्पादकों की दृढ़ इच्छाशक्ति और देशभक्ति के कारण ये पत्र खड़े हो सके और जीवित रहे। इन पत्रों में से 'भारतमित्र' लम्बा चला और आगे चलकर दैनिक हुआ। इस पत्र को आरम्भ से ही अच्छी लोकप्रियता मिली। ''अपेक्षित आर्थिक सहायता प्राप्त होने पर दसवें अंक से 'भारतमित्र' साप्ताहिक हो गया। साल-भर में ही इसे कई संवाददाता मिल गए।''[5]

---

1 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखकः बालमुकुन्द गुप्त) उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.92

2 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.334

3 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.118

4 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.64-65

5 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.118

भारतमित्र के दैनिक संस्करण निकलकर बंद हो गए थे। ''1897 में ही छोटे आकार में 'भारतमित्र' का दैनिक अंक निकला और कुछ ही महीनों के बाद बंद हो गया। 1898 में पुनः भारतमित्र का 'दैनिक संस्करण' निकला जिसका वार्षिक मूल्य 12 रु. था। .....1899 में पुनः बड़े आकार और कम मूल्य में यह प्रकाशित हुआ।''[1]

इस युग की पत्रकारिता में राष्ट्रीय उग्र भावना दिखाई पड़ती है। देशी-विदेशी समाचारों के साथ-साथ लोगों की रुचि को परिष्कृत करने का कार्य भी इन पत्र-पत्रिकाओं ने किया। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार, '' 'समाचार सुधावर्षण', 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'हिन्दी प्रदीप', 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता', 'मालवा अखबार', 'हिन्दोस्थान' आदि पत्र राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थे। उस समय देश में जितनी और जिस प्रकार की राजनीतिक जागृति थी, उससे कुछ आगे बढ़कर उस समय की पत्रकारिता थी। तब पत्रकारिता के जरिये जो कुछ कह दिया जाता था, उतना तथाकथित राष्ट्रीय मंचों पर भी उच्चारित नहीं होता था। बीसवीं शताब्दी आते-आते समाचार पत्रों में राष्ट्रीय चेतना को इतना जागृत कर दिया कि ऐसा समझा जाने लगा कि उसके परिणामस्वरूप राजनैतिक जीवन अधिक उग्र हो गया।''[2]

यह एक नवीन जागरण था जो उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई पड़ता है। हिंदी के लिए आंदोलन, स्वदेशी उत्थान, बंग-भंग का विरोध, देश-दशा का वर्णन आदि ऐसे कई मुद्दे थे जिनमें लोग रुचि लेने लगे थे। लोग विचार करने लगे थे कि यह नवजागरण का प्रतीक था।

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.119

2 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.106

पत्रकारिता के सामाजिक और राजनीतिक मुद्देः-

तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता ने हिंदी साहित्य को आम-जन तक पहुँचाया। इससे पूर्व रीतिकालीन साहित्य सिर्फ दरबारी संस्कृति का गुणगान करता था। इस काल की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ अल्पजीवी रही। फिर भी इनके उत्साह, समर्पित साधना और अदम्य जीवन आकांक्षा की प्रशंसा की जानी चाहिए। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने उस समय की समस्याओं पर लिखा। बाल-विवाह, सती-प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, दहेज प्रथा जैसी वैवाहिक कुप्रथाओं से समाज को जागरूक करवाने का महत्त्वपूर्ण कार्य अनेक सामाजिक संगठनों के साथ मिलकर किया। कुछ लोग अंधविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ चले आंदोलनों का श्रेय अंग्रेजी सभ्यता को देते हैं परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने ऐसे लोगों का खंडन करते हुए लिखा है, ''जाति-पाति का भेद उठाने के लिए, विधवा-विवाह करने के लिए, स्त्रियों में शिक्षा प्रचार करने के लिए हिन्दुस्तान की ही संस्कृति में काफी तत्व मौजूद थे। इन सुधारों के लिए पश्चिम का कृतज्ञ होने की जरुरत नहीं।''[1] देशी पत्र-पत्रिकाओं ने इस दिशा में जो कार्य किया वह अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित होकर नहीं किया।

बाल विवाहः-

कवि वचन सुधा का मत था- ''इस कुप्रथा के विरुद्ध उठाया कदम हिन्दू धर्म में हस्तक्षेप नहीं है क्योंकि मनुस्मृति और अन्य हिन्दू धर्म नियमों में विवाह की आयु 26 वर्ष मानी गई है।''[2] इसी प्रकार भारत मित्र ने भी बाल विवाह रोकने के लिए लिखा था- ''बंग देश से बाल विवाह उठा देने के लिए प्रेसीडेन्सी विभाग के स्कूल इंस्पेक्टर ने एक उपाय स्थिर किया है जो बालक विवाहित है वो कलकत्ते के

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.84

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.156

विश्वविद्यालय में प्रवेशिका परीक्षा न देने पावें। इस प्रकार का एक आइन करना उचित है।''[1]

स्त्री समस्याः-

इस प्रकार विधवा विवाह के समर्थन में भी बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ आगे आई। अल्मोड़ा अखबार, प्रयाग समाचार, ब्राह्मण, हरिश्चन्द्र चंद्रिका, भारतजीवन ने विधवा विवाह के साथ-साथ अनमेल विवाह, शिशु कन्या हत्या रोकने के लिए कानून की मांग की थी। स्त्री के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया था। स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। उचित वक्ता के 25 जून, 1881 के अंत में रामकृष्ण वर्मा का लेख प्रकाशित हुआ जिसमें लिखा था, ''एक दिन यह विधवाओं की आह आपत्ति लावेगी और लावेगी क्या वो आ ही चुकी, देखिए कौन-कौन सी दशा इस भारत की हुई है, यह इन्हीं विधवाओं के शाप का प्रतिफल है।''[2]

जाति प्रथाः-

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने जाति-प्रथा को बदलते समय के प्रतिकूल तथा देश के विकास में बाधक बताया। हिंदी प्रदीप ने कहा था- ''एक समय था जबकि जाति-पाति का अलग-अलग होना धर्म का प्रधान अंग था। इस समय जाति-पाति के झगड़े ही पर देश की फजीहत और सत्यानाश का दारमदार आ लगा है।''[3] अनेक समाज सुधारकों और सुधार संगठनों ने अस्पृश्यता आदि को सामाजिक विकास में बाधक बताया। इसके अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओं ने उस समय में जाति-पाति के झगड़े को छोड़कर एक होने की सलाह दी।

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.158

2 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.231

3 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.165

भ्रष्टाचारः-

भष्ट्राचार की समस्या प्रत्येक युग में रही है। भारतेन्दु ने भी 'अंधेर नगरी' के माध्यम से भष्ट्राचार को उजागर किया है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया। समय विनोद (15 जून, 1876)- ''कलियुग देवता को सिफारिश देवा और भष्ट्रा सुंदरी उनकी दोनों स्त्रियों ने अपनी चाल-ढ़ाल से ऐसा मोहित किया है कि मानो वह उसके दास ही बन गए। जिसने सिफारिश देवी की उपासना की वह धन-धान्य से पूर्ण हो गया। जिसने भष्ट्रा देवी का प्रसाद पाया वह संसार का डर तो क्या ईश्वर से भी निर्भय हो गया।''[1]

स्वदेशी उत्थानः-

एक महत्त्वपूर्ण कार्य जो इस काल की पत्र-पत्रिकाओं ने किया वह था स्वदेशी भाषा, स्वदेशी उद्योगों, स्वावलंबन आदि को महत्त्व देना। देश की उन्नति देशी भाषा में ही संभव है। भारतेन्दु ने 'स्वत्व निज भारत गहै' जैसा मूल वाक्य देशवासियों के हित में दिया गांधी जी के आगमन से लगभग 45 वर्ष पूर्व ही स्वदेशी वस्तुओं के अपनाने पर जोर दिया।

हिंदी आंदोलनः-

जागरण कालीन पत्रकारिता में स्वदेशी आंदोलन, हिंदी भाषा के लिए कितना ममत्व, दायित्व, टीस और लगाव था, वह आज भी हैरान करने वाला है। ''हिंदी आंदोलन का जन्म जागरण कालीन नव-चेतना के फलस्वरुप स्वभाषा, स्वशासन, स्वदेशी के उत्थान के परिप्रेक्ष्य में हुआ था, उसकी प्रकृति सांप्रदायिक नहीं थी। उसका मुख्य विरोध अंग्रेजी सरकार की हिंदी के प्रति तिरस्कार पूर्ण नीति और अंग्रेजी भाषा

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.167

से था।''[1] उस प्रतिकूल परिवेश में हिंदी को अदालतों, सरकारी दफ्तरों तथा शिक्षा संस्थाओं में दाखिल करवाना कोई हंसी-खेल नहीं था। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष अभियान चलाया था। बहुत से हिंदी लेखकों ने हस्ताक्षर अभियान चलाकर हजारों लोगों के हस्ताक्षर कराकर सरकार को ज्ञापन सौंपा था। हिंदी आंदोलन को सफल बनाने के लिए हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष अभियान चलाया। सभी ने मिलकर हिंदी के पक्ष में आवाज उठाई। बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतमित्र' के बारे में लिखा है- ''सन् 1884 ई0 के 'भारतमित्र' में हिंदी का बड़ा आन्दोलन दिखाई देता है। लगातार कितने ही नम्बरों में सम्पादक महाशय ने हिंदी की हिमायत में लेख लिखे हैं।''[2]

हिंदी लेखकों और सम्पादकों ने भी हिंदी के पक्ष में हस्ताक्षर करवाकर हिंदी संबंधी मैमोरियल सरकार को भेजे। ऐसे ही एक लेखक राधाचरण गोस्वामी थे, जिनके बारे में रामविलास शर्मा ने लिखा है- ''सन् 1882 के शिक्षा कमीशन को इन्होंने 'हिंदी संबंधी मेमोरियल' भेजे जिनमें इन्होंने 21,000 के लगभग हस्ताक्षर करायें।''[3]

प्रेस एक्ट का विरोधः-

14 मार्च, 1878 को भारतीय भाषाओं के दमन के लिए 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' लगाया गया। सभी पत्र-पत्रिकाओं ने एकजुट होकर इसके विरुद्ध लिखा। सारसुधानिधि, भारतमित्र, भारत-जीवन, उचित वक्ता आदि पत्र-पत्रिकाओं ने देशी समाचार पत्रों की स्वाधीनता के लिए सरकार से स्पष्ट शब्दों में अनुरोध किया था- ''हम लोगों की दुरावस्था जानने का मुख्य उपाय देशी समाचार पत्र हैं। जब तक इन पर विश्वास

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 255-256

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखकः बालमुकुन्द गुप्त), उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.131

3 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.65

स्थापित करके इनको पूरी स्वाधीनता नहीं दी जायेगी। तब तक प्रजा की यथार्थ प्रकृत अवस्था कभी नहीं जानी जायेगी।''[1]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने वैज्ञानिक चिंतन को महत्त्व दिया, श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तन प्रजातांत्रिक मूल्यों को महत्त्व दिया। अंग्रेजी सरकार से अपने विरोध को प्रकट करने के लिए तरह-तरह के व्यंग्य शास्त्रों का प्रयोग करते थे। राजा चरण गोस्वामी ने 'तुम्हें क्या' नामक लेख लिखा जिसमें उन्होंने अंग्रेजों पर सीधा व्यंग्य किया है। ''हम देशीय पत्र संपादक हैं, हमारा सत्य कहना तुम्हें बुरा लगा। हमसे खुशामद कराने के लिए प्रेस एक्ट की घुड़की दिखलाई, हमारे ऊपर अपना अधिपत्य जतलाया, पर तुम्हें क्या? हम झूठ तो नहीं बोलते, तुम्हारी वृथा खुशामद तो नहीं करते। और अंगरेजी अखबार तो तुम्हें सुना ही देते हैं। वह तो तुम्हारी संकीर्ण राजनीति पर संतोष नहीं करते फिर तुम्हें क्या?''[2]

''अगर ऊपरी तौर पर देखें तो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रभक्ति और राजभक्ति के बीच फंसी एक विचित्र ऊहापोह और असमंजस की मनोवृत्ति से अभिभूत दिखाई देती है, किन्तु गहराई से अध्ययन करें तो स्पष्टतः अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है कि वे केवल राजभक्ति का स्वांग कर रचनाओं को ऐसी शैली में लिखती थीं, जिससे वे कानून की गिरफ्त में न आ सके और जनता औपनिवेशिक शोषण और चरित्र को पहचान कर जाग जाये।''[3]

जागरण से पूर्व की पत्रिकाएँ (उत्थानकाल 1868-1885) एक बंधे हुए जल की तरह शांत थी। परन्तु राष्ट्रीय भावों का उदय होने से उनमें एक उन्मुक्त झरने की तरह गर्जन सुनाई देने लगी। राष्ट्रीयता की भावना प्रबलतर होती गई। फलस्वरुप भारतेन्दु की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हिंद केसरी, अभ्युदय, कर्मयोगी, प्रताप, सत्याग्रही, आज स्वतंत्र, वीर अर्जुन, आदि निर्भीक पत्र-पत्रिकाओं की एक अटूट

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.216
2 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरणः राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.74
3 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.247

श्रृंखला आरम्भ हुई। इन राष्ट्रभक्त पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों ने लाभ प्राप्त करने की इच्छा से निम्न स्तरीय सामग्री का चयन कभी नहीं किया। उन्होंने सदा ही राष्ट्रहित और जनता के प्रति ईमानदारी को महत्त्व दिया। उक्त पत्र-पत्रिकाओं ने सदा ही विपक्ष की भूमिका निभाई।

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का कहना है, ''भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में हिन्दी पत्रों और पत्रकारों की भूमिका नकारी नहीं जा सकती। उन्होंने श्रेष्ठ पत्र दिए और जीवन देश सेवा के लिए अर्पित कर दिया।''[1]

2.3 नया पाठक वर्गः

भारतेन्दु युगीन लेखक 'बालकृष्ण भट्ट' का कथन है- साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है। भारतेन्दु युग में आए नवजागरण के फलस्वरुप एक ऐसा पाठक वर्ग तैयार हो रहा था जो स्वराज की भावना से ओत-प्रोत था। उस समय देश राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा हुआ था। उपनिवेशवादी ताकतों ने आर्थिक-राजनैतिक रुप के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से लोगों को गुलाम बना दिया था। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने उस समय अंधेरे में रोशनी का कार्य किया।

इन सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के क्रांतिकारी विचारों को पढ़कर सुषुप्त जनमानस की नींद टूटी और भारतीय जनता ने अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन का बिगुल बजाया। आरंभिक पत्र-पत्रिकाओं को कम ही ग्राहक मिले थे, क्योंकि उस समय हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं का उर्दू, बंगला और अंग्रेजी के सामने कोई वर्चस्व नहीं था। 1837 में पश्चिमोत्तर प्रांत की भाषा उर्दू हो जाने के कारण हिंदी पत्रकारिता पिछड़ने लगी। हिंदू मुस्लिम जनता का झुकाव उर्दू, अंग्रेजी पत्रकारिता की ओर हो गया था। 1826 में 'युगुल किशोर शुक्ल' ने कलकत्ता से प्रथम हिंदी पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' निकाला। परन्तु इसके बाद भी हिंदी और अन्य भाषाओं के पत्रों का विकास तीव्र गति से नहीं हो

---

1 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.10 (प्राक्कथन से)

पाया। इसके बाद के मुख्य हिंदी अखबारों में बनारस अखबार (1845) प्रसार संख्या-90, शिमला अखबार (1848) प्रसार संख्या- 50, सुधाकर (1850) प्रसार संख्या- 50 आदि थे। 'उदन्त मार्तण्ड' भी डेढ़ वर्ष चलकर बन्द हो गया। कुछ देशी भाषाओं के पत्र ईसाई मिश्नरियों द्वारा निकाले गये। ये पत्र ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए निकाले गये थे। जैसे- समाचार दर्पण (1818), दिग्दर्शन (1818) आदि। इन्हीं का प्रतिरोध करने के लिए भारतीयों ने भी देशी भाषाओं के पत्र निकाले जैसे- बंगाल गजट, संवाद कौमुदी, समाचार चन्द्रिका, मीरात-उल-अखबार, बंगदूत आदि। ईसाईयों द्वारा प्रकाशित पत्र का यह फायदा हुआ कि लोगों की रुचि हिंदी तथा अन्य देशी भाषाओं की तरफ बढ़ने लगी। स्वाभिमान की खातिर लोग अपनी संस्कृति को बचाते हुए हिंदी और देशी पत्रकारिता की ओर अग्रसर हुए।

''सितम्बर 1828 ई0 की जी.स्टाक वैल की रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी भाषा में दो दैनिक, तीन अर्ध साप्ताहिक, एक फारसी का साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था। भारतीय भाषाओं के 6 पत्र (तीन बंगला, दो फारसी, एक हिंदी) छपते थे। 1830 में भारतीय भाषाओं के पत्रों की संख्या 16 हो गयी थी।''[1]

1850 ई0 तक हिन्दी की 10-12 पत्रिकाओं का ही प्रकाशन हो पाया था। इन्हें उचित ग्राहक संख्या नहीं मिलने के कारण इनका जीवन क्षणभंगुर था। 1850 के बाद पत्र-पत्रिकाओं की के दौर में प्रगति आई। लोगों का रुझान हिंदी और उर्दू के साथ-साथ देशी भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं की ओर बढ़ा। उर्दू-कचहरियों की भाषा थी तो हिंदी जनसामान्य की। इस काल में जो पत्र निकले वह द्विभाषी थे, कई पत्र तो दो से अधिक भाषाओं में थे।

1857 के विद्रोह से पहले इन भाषाओं में विभाजन नहीं था। उर्दू पत्रों के सम्पादक हिन्दू थे जैसे कोहेनूर- मुंशी हरसुख राय, आफताबे पंजाब-दीवान बूटा सिंह, अखबारे आम-मुंशी नवल किशोर आदि। ऐस विपरित परिस्थितियों में हिंदी पत्रकारिता

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.79

का विकास करना टेढ़ी खीर था। अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के शब्दों में- ''उस समय के इन पत्र संचालकों की प्रशंसा करनी चाहिए कि जब न तो बहुत से ग्राहकों की आशा थी और न ही विज्ञापनों की फिर भी इन्होंने केवल देशभक्ति और प्रजाहित कामना से प्रेरित होकर अपना धन, श्रम और समय ऐसे कार्य में लगाया, जिससे किसी प्रकार के लाभ की उन्हें कोई आशा न थी।''[1]

1857 का वर्ष राजनीतिक उथल-पुथल का था। उस समय के अंग्रेजों के अखबारों में भारतीयों के खिलाफ हिंसात्मक लेख लिखे जा रहे थे, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरुप मुम्बई समाचार, जामे जमशेद, रास्त गुफ्तार (सत्यवक्ता), पयामे आजादी जैसे पत्रों में भारतीयों की निर्दोषता सिद्ध की जाती थी। लॉर्ड कैनिंग ने उत्तेजना को रोकने के लिए सारे भारत में 'ऐडम रेग्युलेशन एक्ट' लगा दिया जो 'गलघोंटू कानून' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कानून के चलते बहुत से पत्रों पर मुकदमे चले जिनमें से 'समाचार सुधावर्षण', अमृतबाजार पत्रिका (बंगला), स्टेटमैन (अ0), बंगाली, संध्या, वन्दे मातरम् (बंगाली), केसरी (मराठी) आदि प्रमुख थे। इससे इन पत्रों की लोकप्रियता बढ़ी। केसरी के सम्पादक बाल गंगाधर तिलक पर आपत्तिजनक लेखों के कारण राजद्रोह का मुकदमा दो बार चला। तिलक ने माफी माँगने की बजाय जेल जाना उचित समझा। केसरी की ग्राहक संख्या 1885 में 2500 थी। तिलक के समर्थन में लाखों लोगों ने चंदा दिया। मुहम्मद अली जिन्ना ने तिलक का केस लड़ा, परन्तु सजा से बचा नहीं पाए। अंग्रेजी सरकार प्रेस की स्वतंत्रता को रोकने के लिए विभिन्न एक्ट लगा रही थी, जिससे स्वाधीनता की चेतना को रोका जा सके। इसी संदर्भ में लॉर्ड लिंटन ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, 1878 लगाया। ''इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को उन समाचार पत्रों पर कठोर नियंत्रण एवं दण्डित करने का अधिकार प्राप्त हो गया जो ब्रिटिश सरकार के प्रति राजद्रोह एवं भड़काने वाले लेख लिखा करते थे।''[2]

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.121
2 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.28

अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों, उर्दू-अंग्रेजी को बढ़ावा देना, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट आदि के परिणामस्वरुप लोगों में स्वहित की भावना को विकास हो रहा था। इसलिए विरोध में लोगों का झुकाव हिंदी और देशी भाषाओं की पत्रकारिता की ओर हुआ।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का नाम हिन्दी के प्रवर्तकों में माना जाता है। इन्होंने आसान हिन्दी निर्माण में क्रान्तिकारी कार्य किया। 1868 में इन्होंने युक्त प्रदेश की सरकार से अदालतों में पहली बार फारसी की जगह नागरी लिपि लागू करने की माँग उठाई। वीर भारत तलवार ने राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा है, ''राजा शिवप्रसाद ने सरकार से कहा कि- जैसे राज-काज से फारसी भाषा को हटाया, उसी तरह अब उसकी लिपि को भी हटा देना चाहिए। इससे कई फायदे होंगे- जनता को अदालती कार्यवाही समझ में आ सकेगी, शिक्षा पूरी करने में कम समय लगेगा, देशी भाषाओं का विकास होगा और 'हिन्दू जातीयता' की भावना फिर से कायम हो सकेगी, जिसे हिन्दी नवजागरण कहा जाता है उसकी शुरुआत 1868 के इसी मेमोरेंडम से हुई थी।''[1]

1868 में भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' से नए युग का आरम्भ हुआ। इस पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी संस्कृति को प्रोत्साहन देते हुए 'स्वत्व निज भारत गहै' जैसा मूल वाक्य दिया। इस पत्रिका के माध्यम से नए कवियों को प्रोत्साहन दिया जाता था। इसी पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी संस्कृति को अपनाने की शपथ ली गई। 1873 में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' से भारतेन्दु हिंदी को नयी चाल में ढलने की बात कहते हैं। इस पत्रिका से पाठक वर्ग नए विषयों की ओर आकृष्ट होता है। इस पत्रिका में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे और सामंती संस्कृति के खिलाफ कभी खुल्लम-खुल्ला तो कभी राजभक्ति की चाशनी में डुबोकर लेख लिखे जाते थे, जिससे अंग्रेजी सरकार ने क्रुद्ध होकर इसकी 100 प्रतियाँ लेनी

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.64

बंद कर दी। 1865 से लेकर 1900 तक पत्र पत्रिकाओं की संख्या 350 तक पहुँच चुकी थी। इसका मुख्य कारण पाठक वर्ग का आकर्षित होना था।

इस काल की मुख्य पत्रिकाएँ हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, सारसुधानिधि, हिन्दोस्थान, मित्रविलास, उचितवक्ता, नागरी नीरद, आनन्द कादम्बिनी, भारत जीवन, भारत मित्र इत्यादि थे। आगे चलकर भी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि होती गई। ''उत्थान काल (1865-85) में लगभग 2 दैनिक, 30 साप्ताहिक, 5 पाक्षिक, 35 मासिक तथा प्रसार काल (1886-1900) में लगभग 31 साप्ताहिक, 7 पाक्षिक तथा 60 मासिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई।''[1]

इन पत्रिकाओं के विषय राष्ट्रीय चेतना, समानता, सामाजिक रुढियों के खिलाफ आवाज, नारी शिक्षा, स्वदेशी चेतना, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना था। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता आमजन से जुड़ी थी। एक ही व्यक्ति सम्पादक लेखक प्रकाशक, प्रूफ रीडर और अखबार पढ़ाकर सुनाने वाला होता था। भारतेन्दु युगीन लेखक लगभग चार-पांच भाषाएँ जानते थे। इन्होंने तत्कालीन समस्याओं पर जितना लिखा उतना ही लोकजीवन तीज-त्योहार, ग्राम्य जीवन पर भी लिखा। भारतेन्दु ने तो ग्राम गीत लिखने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया था और लोक भाषा में लिखने के लिए कहा। समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरुप होता है। इसी बात को इंगित करते हुए 'भारत मित्र' का प्रथम ही वाक्य था। ''सुसभ्य प्रजा हितैषी राजा लोग समाचारों को स्वाधीनता देकर उत्साहित करते हैं- क्योंकि समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधिस्वरुप होता है।''[2]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने केवल तत्कालीन समस्याओं पर लिखा, बल्कि उनके समाधान में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुराने और नए लोगों को अपने साथ

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.263

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.263

जोड़ा। हिंदी से संबंधित आंदोलन में इन पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतेन्दु ने अपनी सम्पत्ति लुटाकर हिंदी की सेवा की। कार्तिक प्रसाद खत्री ने कलकत्ता से आसाम जाकर जंगलों में आदिवासी जातियों को हिंदी की शिक्षा दी। हिंदी आंदोलन में दस हजार के लगभग लोगों के हस्ताक्षर करवाकर ज्ञापन दिया। मेरठ के 'गौरीदत्त शर्मा' ने भी, कचहरियों में नागरी प्रवेश को लेकर जो आंदोलन हुआ, उसके लिए कई हजार लोगों के हस्ताक्षर करवाए। ''कचहरियो में हिंदी प्रवेश के लिए न जाने कितने आवेदन-पत्र दिए गये और इनमें हस्ताक्षर आदि कराने के लिए न जाने कितने आवेदन-पत्र दिये गए और इनमें हस्ताक्षर आदि कराने के लिए न जाने कितने व्याख्यान दिये गये और सभाएँ की गयी।''[1] जिसके परिणामस्वरुप सन् 1900 में कचहरियों में नागरी को प्रवेश मिला। इसके अतिरिक्त अन्य सभाएँ जैसे- हिंदी उद्धारिणी सभा, हिंदी वृद्धिनी सभा, कविता वृद्धिनी सभा, तटीय समाज, काशी नागरी प्रचारिणी सभा आदि। इन संस्थाओं ने लोगों को अपने साथ जोड़ा। नेता जो बात मुँह से कहने में डरते थे, वहीं इन पत्र-पत्रिकाओं के लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से कही। इन पत्रों के एक-एक अंक को लोग गंभीरता से पढ़ते थे। इन पत्र-पत्रिकाओं से अंग्रेजी सत्ता भी डरती थी। इसलिए प्रेस एक्ट लगाकर इनकी स्वाधीनता छीनना चाहती थी। परन्तु इन पत्र-पत्रिकाओं ने झुकना स्वीकार नहीं किया, चाहे अल्पाविधि में बंद हो गई।

''1857 का परवर्ती भारतीय मानस अवसादग्रस्त हो गया था, सरकारी दमनचक्र उग्र हो चला था जिसका एकांत लक्ष्य था- राष्ट्रीयता की उग्र चेतना को समूल उखाड़ फेंकना। इस प्रकार भारतीय पत्रकार के सामने दो कठोर मोर्चे थे। एक देशवासियों की मानसिक खिन्नता थी, दूसरी सरकारी दमन नीति। इस संक्रांति काल में हिन्दी पत्रकारिता के दूसरे चरण का निर्माण हुआ। संक्रांति की चुनौती ने जैसे भारतीय पत्रकारों को झकझोर कर जगा दिया था। इस जागृति ने भारतीय मानस-मनीषा को

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.38

जगाने में बड़ी भूमिका प्रस्तुत की।''[1] 1857 के बाद अंग्रेजी सत्ता ने छद्म वेश धारण किया और प्रगतिशील होने का दावा किया। परन्तु इन पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय जनता को आईना दिखाया। मुख्यतः 1870 के बाद की पत्र-पत्रिकाओं ने भव्य दरबार आयोजन (1877), वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट (1878), आर्म्स एक्ट (1879), इलबर्ट बिल (1883), कौंसिल सुधान कानून (1893) संबंधी विवाद दिखाकर भारतीय जनता को आईना दिखाया। ''तीव्र गति से बदलते इतिहास से दिग्भ्रमित जन-समुदाय को नयी सोच, नये आत्माभिमान और नये ज्ञान की ज्योति से सही मार्ग सुझाया था- ''उस युग के छोटे-छोटे प्रकाशित पत्र-प्रदीपों ने।''[2]

वह समय ऐसा था कि जब लोग अखबार की बातों को गीता की तरह सत्य मानते थे। इसलिए धीरे-धीरे पाठक इनसे जुड़ते जा रहे थे। अप्रशिक्षित जनता अप्रत्यक्ष रुप से इनसे जुड़ी हुई थी, क्योंकि बहुत से लोग ग्राहक इस शर्त पर बनते थे कि उन्हें पत्र पढ़कर सुनाया जायेगा।

भारतेन्दु युग की की प्रतिभा उस समय के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट हुई है। नाटक, सभा-संस्थाओं, भाषणों संगठनों के द्वारा लेखक अधिक से अधिक लोगों को अपनी तरफ जोड़ते थे और इन्हीं के माध्यम से लेखक अपने विचारों को जनता से अवगत कराते थे। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अधिक दूरी पर समाचारों को भेजा जा सकता था।

इस युग से पहले पत्र-पत्रिकाओं की कोई जीवित परम्परा नहीं थी। परन्तु बहुत कम समय में बडी संख्या में पत्रों का निकलना हिंदी नवजागरण में इनकी सकारात्मक एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका का द्योतक है। इनमें से बहुत से पत्र अल्पजीवी रहे। इसका कारण वहाँ की परिस्थितियाँ हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि- ''लाहौर,

---

1 (सं.) वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ.102

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.171

बम्बई ओर कलकत्ता को यदि तीन सीधी रेखाओं में मिला दिया जाए तो जो त्रिकोण बनेगा, उसके भीतर देश का वह भाग आ जायेगा, जहाँ से इस प्रकार के पत्र निकले थे।''[1]

इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी की बहुत सेवा की। हिंदी आंदोलन के साथ लाखों लोगों को जोड़ा। इन सम्पादकों ने तन-मन-धन से पत्र साहित्य में अभिवृद्धि की। इसका मुख्य कारण पैसा कमाना अथवा प्रसिद्धि प्राप्त करना नहीं था, अपितु जनता की सेवा करना, समाज की दूषित मनोवृत्तियों को दूर भगाना और अंग्रेजों के लोक राज्य की पोल खोलना था। साथ-साथ ऐसे भारतीयों पर भी व्यंग्य किया जो अंग्रेजों की राजभक्ति करते थे। 'भारतेन्दु' नामक पत्र में राधाचरण गोस्वामी ने 'मिस्टर बूट' नामक लेख लिखा जिसमें वे कहते हैं, ''मिस्टर बूट आप हैं हमारे प्यारे आंखों के तारे, अंग्रेजों के दुलारे। आप हैं काले, विलायती खाले, अंधेरे घर के उजाले, उन्नीसवीं सदी के साले। आप हैं अनमोल गोलमटोल पोलमपोल, खाली ढोल, बिल्कुल बेबोल। आप हैं बड़े-बड़े, कड़े-सड़े, जमीन में पड़े मजबूत तड़े।''[2]

उस समय के प्रेस संचालकों के सामने अनेक कठिनाइयाँ थी। विपरित परिस्थितियाँ, कम मूल्य के बावजूद उचित ग्राहक संख्या नहीं होना, समय पर मूल्य नहीं मिलना, प्रेस एक्ट का भय इत्यादि। फिर भी देश हित की कामना से पत्र-संचालक कार्य कर रहे थे। 'हिंदी प्रदीप' ने प्रथम ही अंक में स्पष्ट कर दिया था कि मुख्य उद्देश्य देश की भलाई है, रुपये कमाना नहीं।

'भारत जीवन' ने प्रजा का दुखडा रोना तथा राष्ट्रीय एकता मुख्य कर्त्तव्य बताया। 'सारसुधानिधि' ने भी देश की उन्नति, हिंदी का प्रचार करना, हिंदी लिखने वालों की संख्या में उन्नति करना, भारतीयों के मनोबल को प्राचीन तथा सामयिक घटनाओं के माध्यम से बढ़ाना मुख्य लक्ष्य रखा। 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' के पहले ही अंक

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.37
2 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरणः राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.59

में मनोरंजक प्रश्नावली छपी थी- 'यूरोपीय के प्रति भारत वर्ष के प्रश्न'। 'भारतमित्र' के पहले ही अंक में लिखा था- समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरूप होता है।

भारतेन्दु युग के पत्र साहित्य में मनोरंजकता के साथ प्रगतिशीलता भी है। देश-विदेश से संबंधित समाचार देने में वे अग्रसर रहते थे। इन पत्रों ने काबुल युद्ध, जुलू युद्ध, अंग्रेजों के अन्य देशों के युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन और उससे होने वाले अपव्यय का भी वर्णन किया है। जिससे अंग्रेजों की कूटनीति पाठकों के समझ में आए। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है- ''जनता में जागृति फैलाने का प्रधान साधन पत्र थे। पत्र साहित्य में उस समय की उग्र राजनीतिक चेतना भली-भांति प्रकट हुई है। भाषा और शैली में तब के पत्रकारों ने जो आदर्श अपने सामने रखा, वह हमारे लिए आज भी अनुकरणीय है।''[1]

उस समय के मुख्य पत्रों की प्रसार संख्या इस बात का संकेत है कि विपरित परिस्थितियाँ होते हुए भी कैसे लोग हिंदी की तरफ आकर्षित हो रहे थे। 'भारतजीवन' की प्रसार संख्या 2000 के लगभग, 'केसरी' की 1500 के लगभग, 'उचित वक्ता' की 1500 के लगभग थी। परन्तु कुछ पत्र जिनकी प्रसार संख्या कम थी, जैसे- कविवचन सुधा, हिंदी प्रदीप, हिंदुस्थान आदि बहुत महत्त्वपूर्ण थे। हिंदी प्रदीप का 32 वर्ष तक चलना इसी बात का प्रमाण है। मूल्य कम रखने पर पैसे नहीं मिलते थे। 'उचित वक्ता' के संपादकीय लेख 'कौन कहता है कि भारतवासियों में एका नहीं है?' मैं खीझ कर कहा था- ''पाठकों शायद आप लोगों को इस बात का अनुभव न हो, परन्तु हिंदी पत्रों के (केवल हिंदी पत्रों के नहीं वरन् देशीय समस्त भाषा के) संपादक तो इस बात को खूब अच्छी तरह से जानते हैं। वे लोग मुक्त कंठ से स्वीकार कर लेंगे कि संवाद

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.37

पत्रों के दाम न देने में भारतवासियों का ऐसा एका है कि दूसरे देशों में ढूँढने पर भी न मिले।''[1]

उस समय हिंदी के लिए परिस्थितियाँ विपरित थीं। हिंदी को कम ही लोग पढ़ते थे। ऐसे समय में पत्र संचालकों का अदम्य साहस ही था कि अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर रहे थे। धीरे-धीरे ही सही लोगों का रूझान हिंदी पत्रों की तरफ बढ़ रहा था।

उन्नीसवीं सदी अंतिम दौर में पाठकों और संपादकों का गहरा रिश्ता था। पाठक बिना हिचक, बिना दुराव-छिपाव के सम्पादकों को कभी शिकायत, कभी प्रशंसा, कभी राष्ट्रीय समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत करते थे। पुराने पत्रों की फाइलों में सैंकड़ों ऐसे पत्र संपादकों के नाम पर प्रकाशित हुए हैं। 'हिंदी प्रदीप' के पाठक का सम्पादक के नाम पत्र के कुछ अंश इस प्रकार से हैं :-

''मान्यवर, संपादक महोदय,

आपके प्रतिमास की सूचना देखकर मन में संदेह होता है कि मैंने मूल्य दिया या नहीं.....। क्या तू ही अकेला है, बहुतेरे पड़े हैं, क्या तेरे ही देने से संपादक का घाटा पूरा हो जाता है। इसी में सब रूपया बर्बाद कर देगा तो बीबी नसीबन को क्या देगा?..... जब से आप अपना पत्र भेजकर अपने उत्तेजक रूपी अमृत की घूँटी मुझे जबरदस्ती घुटाने लगे तब से अपना भला या बुरा पहचानने की कुछ अक्ल आ गई है। पर प्रकृति को शीघ्र बदल पाना महादुर्बल है। इसलिए आग्रह करता हूँ कि आप पत्र भेजना बंद न करें और हमारी सलाह माने तो एक बार नादेहन ग्राहकों की लिस्ट छाप दें।

अफसोस कि हम हिंदू कहलाते हैं और हिंदी को ही न चाहते- इतना कहने पर भी तो उत्तेजना न हो हिंदी के विपक्षियों का हिंदू होना अपराध है।''[1]

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.118

नवजागरण कालीन पत्रकारिता एवं पत्र-पत्रिकाओं की एक विशेषता रही है कि ये विभिन्न मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित कर रही थी। एक विशेष पाठक वर्ग का निर्माण हो रहा था जिस पर आधुनिक भारतीय समाज का खाका तैयार हो रहा था।

इस दौर की पत्रिकाएँ भारतीय समाज के उन हिस्सों को आलोकित कर रही थी, जो अब तक ज्ञान और प्रकाश से अछूता था। यह तथ्य रेखांकित करने योग्य है कि नवजागरण कालीन पत्रकारिता ने अपनी उपस्थिति को बेहद महत्त्वपूर्ण बना दिया था।

2.4 हिंदी समाज पर प्रभावः

भारतेंदु युग नवजागरण का युग था। इस काल में आई क्रांति ने सम्पूर्ण भारतीय समाज को झकझोर कर रख दिया था। इस युग में आई सैंकडों पत्र-पत्रिकाओं ने एक नई विचारधारा प्रस्तुत की, जिसमें स्वहित की भावना निहित थी। इस युग की पत्र-पत्रिकाओं के सिद्धान्त वाक्य को पढ़कर ही उनके उद्देश्य का अंदाजा लगाया जा सकता है। आरंभ से ही पत्र-पत्रिकाओं के मूल वाक्य में राष्ट्रीय भाव झलकता है। ''हिक्की ने 1780 में जो पहला भारतीय समाचार पत्र 'बंगाल गजट' अंगरेजी में निकाला, उसका आदर्श वाक्य था- 'सभी के लिए खुला, फिर भी किसी से प्रभावित नहीं'। भारतीय भाषाओं में पहला समाचार पत्र बंगला में था- 'समाचार दर्पण' (1818), जिसका आदर्श वाक्य था- दर्पण सौंदर्य देखने के लिए होता है। यह दर्पण विभिन्न वृतांतों और समाचारों का है।..... 1823 में ही हेस्टिंग्स ने प्रेस की स्वतंत्रता पर हमला कर दिया था। फिर भी 'उदंत मार्तंड' निकला, उसका आदर्श वाक्य था 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु'। भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' में घोषणा ही कर दी 'स्वत्व निज भारत गहे'।''[2]

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.130-131

2 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञान भारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.172-173

इस युग के लेखकों ने भी तन-मन-धन से देश सेवा की, जिसका माध्यम उनकी लेखनी थी। हिंदी पत्रों के माध्यम से उन्होंने उस समय की ज्वलंत समस्याओं को उठाया, अंग्रेजी शासन का आईना भारतीय समाज को दिखाया। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने में भी स्वहित की भावना निहित थी। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने तत्कालीन समाज में बहुत से आंदोलन किए जैसे- हिंदी और उर्दू का वर्चस्व, गौ-रक्षा आंदोलन, नागरी आंदोलन, खड़ी बोली का आंदोलन, भाषा और व्याकरण से संबंधी आंदोलन आदि। इन विवादों में दो-तीन से भी अधिक पत्र भाग लेते थे, जैसे- 'हिन्दोस्थान' का 'खड़ी बोली विवाद', 'भारत मित्र' का 'भाषा की अनस्थिरता' संबंधी विवाद आदि। इसी संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि- ''भारतेंदु युग राजनीतिक, सामाजिक तथा भाषा संबंधी आंदोलनों का युग था।..... इन आंदोलनों के नेता पत्रिकाओं और पुस्तकों से ही संतोष करने वाले जीव न थे। नाटक सभा, व्याख्यान जो भी साधन मिलता, उसे काम में लाने में वे न हिचकते थे। नाटकों से भी एक सीधा ढंग जनता के सम्पर्क में आने का व्याख्यान का है।''[1]

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए उस समय जो कार्य हुआ वह आज भी महत्त्वपूर्ण है। डॉ. शंभुनाथ ने भारतेन्दु युग के लेखक अयोध्या प्रसाद खत्री के खड़ी बोली से सम्बन्धित विवाद के योगदान को अंकित करते हुए कहा है, ''अयोध्या प्रसाद खत्री की एक बड़ी देन है, उन्होंने जोरदार शब्दों में भाषा को जाति (कास्ट) और मज़हब से अलग किया, क्योंकि इसके बिना हिंदी क्षेत्र के लिए एक सर्वमान्य भाषा रूप का गठन मुश्किल था।''[2]

हिंदी साहित्य और भाषा के विस्तार के लिए अनेक सभाएँ, साहित्यिक संस्थाएँ, समितियाँ बनी। इनमें से बहुत सी आर्यसमाज की सभाएँ थी। कुछ सनातन धर्म तथा जातियों की सभाएँ थी। राधाचरण गोस्वामी जी की 'कवि-कुल-कौमुदी' प्रयाग की 'हिंदी

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975 पृ.38
2 शंभुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिन्दी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.29

उद्धारिणी सभा', पटना का 'कवि-समाज' 'राँची में मातृभाषा-प्रचारिणी सभा, कार्तिक प्रसाद खत्री का 'मित्र समाज', सुधाकर द्विवेदी की 'विज्ञान प्रचारिणी सभा' और 'तुलसी स्मारक' आदि मुख्य थी। भारतेंदु ने अनेक सभाएँ स्थापित की और अनेक संस्थाओं को उनका योगदान प्राप्त था। 'कविता-वृद्धिनी-सभा', तदीय समाज, पेनीरोडिंग क्लब आदि भारतेंदु की संस्थाएँ थी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का कार्य इस दिशा में उल्लेखनीय रहा।

सिर्फ हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए ही नहीं बल्कि अन्य समसामयिक समस्याओं की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए इन सभाओं ने कार्य किया। उस युग में विलायत जाने पर जाति-बाहर करने का नियम था। समाज में जाति-प्रथा चरम सीमा पर थी। भारतेंदु युग के ही 'सुधाकर द्विवेदी' जैसे गणित और संस्कृत के विद्वान ने इस व्यवस्था पर प्रहार किया। बनारस के टाऊन हॉल में दिए गये उनके भाषण के कुछ अंश इस प्रकार थेः- ''जो लोग काँच के गिलास में पानी पीना अधर्म समझते थे, उनको लक्ष्य करके उन्होंने कहा कि स्त्रियाँ काँच की चूडियाँ पहन कर भोजन बनाती है तो रोटियाँ अशुद्ध क्यों नहीं होती? खान-पान में जाति भेद की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने कहा- अँगूर काबुल से आते हैं, कौन नहीं खाता? यदि एक चमार ला देवे या छू देवे तो अपवित्र हो जाता है। किंतु जहाँ से आया, वहाँ कौन छूता है, इसका विचार नहीं। फिर राजा-महाराजा अब भी विदेश घूम आते हैं, उन्हें कोई जाति-बाहर नहीं करता। क्या बड़ों के लिए और धर्म होता है और छोटों के लिए और?''[1]

जाति प्रथा के संबंध में भी इन लेखकों के विचार अपने समय से बहुत आगे निकले हुए थे। ''जन्म से वर्ण नहीं होता।''[2] 1910 में सुधाकर द्विवेदी द्वारा कही गई

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ. 40-41

2 वहीं, पृ.41

यह बात कितनी क्रांतिकारी होगी? इसी प्रकार विदेश जाने वालों के बारे में कहा- ''विदेश जाने वालों को जाति में लेने की बात दूर सुधाकर द्विवेदी ने घोषित किया कि जो देश हित के लिए विदेश से विद्या सीखकर आए उसका ऋषि के समान आदर होना चाहिए।''[1]

इन लेखकों को यह भी पता था कि समाज के लोग उन्हें इनकी बातों के लिए गालियाँ भी देंगे। परन्तु फिर भी लोग सोचने पर मजबूर तो अवश्य हुए होंगे?

भारतेंदु की गिनती श्रेष्ठ वक्ताओं में की जाती थी। उनका बलिया वाला भाषण आज भी याद किया जाता है। इस व्याख्यान में उन्होंने लोगों को चेताया है। अपने नाटकों के माध्यम से लोगों की निद्रा तोड़ने की कोशिश भी की। सत्य हरिश्चन्द्र, नील देवी, अंधेर नगरी, विषस्य विषमौषधम आदि के माध्यम से समाज में चेतना आई और ये साहित्यिक विद्याएँ आज भी प्रासंगिक है। स्वदेशी की कामना करते हुए बलिया वाले भाषण में भारतेंदु कहते हैं कि- ''जब तक सौ-दो-सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जाति से बाहर न निकाले जाएंगे, दरिद्र न होंगे, वरन् जान से न मारे जाएंगे, तब तक कोई देश न सुधरेगा।''[2]

आज 'हिंदू' शब्द का अर्थ संकीर्ण लिया जाता है परन्तु 1884 में भारतेंदु ने हिंदू शब्द को अधिक व्यापक बनाते हुए कहा था- ''इस महामन्त्र का जप करो, जो हिन्दुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू है। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्रह्मणों, मुसलमानों सब एक का हाथ एक पकड़ो।''[3]

भारतेंदु ने यह भाषण अंग्रेज अधिकारियों की मौजूदगी में दिया था। यह उनकी निर्भीकता का प्रमाण था, जिससे लोग प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। भारतेंदु युग की नाटक रचना उस समय के युगीन वातावरण से प्रभावित दिखाई पड़ती है। हरिश्चन्द्र मैग्जीन

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.41
2 वहीं, पृ.42
3 वहीं, पृ.42-43

में बहुत से नाटक धारावाहिक रुप में प्रकाशित होते थे। श्रीनिवासदास का 'तप्ता संवरण' कार्तिक प्रसाद खत्री का 'रेल का विकट खेल', 'बाल विधवा संताप', 'ग्राम पाठशाला' 'प्रतापनारायण मिश्र का 'भारत-दुर्दशा रूपक', 'कलिकौतुक रुपक' आदि में युग भावना विशेष रुप से परिलक्षित हुई है। इन रचनाओं का आमजन पर विशेष रुप से प्रभाव पड़ा, क्योंकि ये लोक जीवन से और स्थानीय समस्याओं से जुड़ी थी।

राधाचरण गोस्वामी के प्रहसन 'तन-मन-धन श्री गुसाई जी के अर्पण' और 'बूढ़े-मुँह मुहाँसे' विशेष रुप से लोकप्रिय हुए। पहले प्रहसन में तो मन्दिर में रहने वालों गोस्वामी का असली चेहरा दिखाने का प्रयास किया है और दूसरे में किसान और जमींदारों के संघर्ष के साथ-साथ हिंदू-मुस्लिम एकता को दिखाने का प्रयास किया जाता है। यह उस समय की युगीन चेतना है कि अन्याय के खिलाफ हिंदू और मुस्लिम साथ खड़े होते हैं। सर्व-धर्म-समभाव में विश्वास रखने वाले राधाचरण गोस्वामी विचारों में भारतेन्दु से अधिक उग्र थे। स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुनने के लिए अपना कुल धर्म भी छोड़ दिया था। परन्तु फिर भी किसी एक मत में बँध कर नहीं रहे। स्वयं गोसाई होते हुए भी इन्होंने 200 के लगभग लेख लिखे, जो गोसाई धर्म की नींव हिलाने वाले थे। हिंदी संबंधी आंदोलन में इन्होंने लगभग 21000 लोगों के हस्ताक्षर करवाए। विधवा-विवाह के समर्थन में इनके विचार अपने समकालीनों से अधिक उग्र थे। इनका मत इस प्रकार से था, ''आप यदि कोई राजा-महाराजा किसी विधवा कन्या से पुनर्विवाह करना चाहे तो राजान्नपोषित सब पण्डित व्यवस्था दे देंगे कि विधवा-विवाह सशास्त्र है परन्तु इन दुखियाओं को कौन पूछता है? वरन् पण्डितों ने विधवा-विवाह का खंडन अपनी जीविका का हेतु बना रखा है। साधारण हिन्दू लोग अपनी जाति के नियमों के आबद्ध है। जब तक यह विषय जाति में ग्राह्य न हो, विधवाओं का कष्ट दूर नहीं होगा।''[1]

---

1 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिंदी नवजागरण और राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.206-207

कर्मेन्दु शिशिर का कहना है- ''हिंदी नवजागरण के लेखकों में एक विशेषता यह मिलती है कि वे सिर्फ कलम चलाने वाले रचनाकार भर नहीं होते थे। बल्कि वे अपने समय और देश के प्रति सकर्मक जागरुकता रखते थे। भारतेन्दु मंडल के लगभग रचनाकारों ने विभिन्न संगठनों का निर्माण किया था और आगे बढ़कर जनता के संघर्षों में भागीदार भी हुए थे। इनकी बुनियादी विशेषता समूहवाद की थी।''[1]

ये रचनाकार विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से जनता से जुड़ते थे। गोस्वामी जी ने वृन्दावन से 'भारतेंदु' नाम का पत्र निकालते थे। इस पत्र ने आंदोलन करके मथुरा से वृन्दावन तक रेल मार्ग का निर्माण करवाया। 'यमलोक की यात्रा' इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें गो-दान करने पर स्वर्ग जाने का मजाक उड़ाया है।

भारतेंदु युगीन लेखक बालकृष्ण भट्ट का सिद्धान्त वाक्य है- 'साहित्य जन-समूह के हृदय का विकास है'। जनसमूह की भावनाओं को लेकर ही इन्होंने साहित्यिक रचनाएँ की जिसका अपेक्षित प्रभाव भी पड़ा। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और बद्रीनाथ चौधरी जैसे रचनाकारों ने भारतेन्दु की परम्परा को आगे बढ़ाया तो बालमुकुन्द गुप्त जैसे पत्रकारों ने नई शैली विकसित की। हास्य और व्यंग्य का ऐसा सम्मिश्रण होता था कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। प्रत्येक लेखक को उसकी विशिष्ट शैली से पहचाना जा सकता था। ग्रामीण बोलियों से इनकी निकटता थी। दाँत, भौं, नाक पर भी इन्होंने निबंध लिखे तो ब्रैडला स्वागत, अरी बुढ़ापा और तृप्यन्ताम जैसी कविताएँ भी लिखी। ब्राह्मण ने स्वदेशी आंदोलन चलाया। उसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने 32 वर्षों तक हिंदी प्रदीप चलाया। हिंदी आलोचना का जन्म हिंदी प्रदीप से माना जाता है। जिससे साहित्य के माधुर्य से लेकर 'ज्वार की रोटी' तक का माधुर्य है।

'शिवशम्भु के चिट्ठे' के माध्यम से बालमुकुन्द गुप्त ने राजनीतिक-व्यंग्यात्मक लेख लिखे, जिनको लोगों ने बड़े चाव से पढ़ा। उस युग के साहित्य की मुख्य बात

---

1 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिंदी नवजागरण और राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.16

यह है कि लोक साहित्य को विशेष महत्त्व दिया गया। कवि वचन सुधा में भारतेंदु ने विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, ग्राम्य भाषा में गीत लिखने के लिए। साधारण भाषा में असाधारण संदेश पहुँचाने के लिए भारतेंदु कितने प्रयत्नशील थे इसका प्रमाण उनकी इस विज्ञप्ति से मिलता है- ''सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम-गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।''[1] भारतेन्दु ने लोगों से निवेदन किया था कि छोटे-छोटे छन्दों में गीत व छन्द बनाकर भेजे ताकि उन्हें प्रकाशित किया जा सके।

संगीत को लोक साहित्य के साथ जोड़कर उसे व्यापक रुप में प्रसारित करने का प्रयत्न हो रहा था ताकि उसे ग्राम्य समाज तक पहुँचाया जा सके। इन ग्राम गीतों के विषय भी समसामयिक थे जैसे- बाल-विवाह, शराब, शिक्षा, जन्मपत्री, भ्रूण-हत्या, बहुजातित्व आदि। इन विषयों के माध्यम से लोगों में चेतना लाई गई। टैक्स, अकाल, गरीबी आदि पर आल्हा लिखे जाते थे। सारसुधानिधि, हिंदी प्रदीप, भारत मित्र, हरिश्चन्द्र मैग्जीन आदि में आल्हा छपते थे। उस युग के लेखकों का जन-भाषा में साहित्य रचना उनके आम-जन से जुड़ाव का प्रतीक है।

ग्राम-गीतों के माध्यम से अशिक्षितों में भी चेतना जगाने का प्रयत्न किया। एक ओर तो सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के लिए वातावरण तैयार करना था तो दूसरी ओर अपने ही लोगों की रूढिवादी परम्पराओं से मुकाबला करना था। ''जनता के पुराने संस्कारों को छूना उसके धर्म को चुनौती देना था, एक बार हुसकाई जाकर जनता सभी नये विचारों को संदेह से देखने लगती। परन्तु भारतेंदु ओर उसके साथियों ने इसकी चिन्ता न करके दृढ़ता से अपना युद्ध छेड़ दिया। नास्तिक, किरिस्तान कहे

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.12

जाने पर भी उन्होंने अपना सुधार का मार्ग न छोड़ा। इसके साथ ही उन्हें अपनी भाषा के लिए लड़ना था।''[1]

इन सब बातों का हिंदी समाज पर प्रभाव भी हुआ। फलस्वरुप हिंदी संबंधी आंदोलन में तीव्रता आई। परिणामस्वरुप सन् 1900 में अंग्रेजी सरकार को कचहरियों में हिन्दी को प्रवेश देना पड़ा।

उस समय में बहुत से मुद्दे ऐसे थे जोकि तत्कालीन लेखकों ने अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उठाया था। जिनका लोगों पर अपेक्षित प्रभाव भी पड़ा। कुछ मामलों में तो ब्रिटिश सरकार को अपना निर्णय बदलना पड़ा। यह सब पत्र-पत्रिकाओं की तरफ लोगों के बढ़ते रुझान की वजह से था। भारतीय पत्रकारिता ने भारत में स्वायत्त शासन, लेजिस्लेटिव, प्रान्तीय कौंसिल तथा ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व की माँग संसद में उठाई। लोगों ने इस माँग को धार दी। इसका परिणाम यह हुआ कि पहली बार भारतीयों को संवैधानिक ढाँचे में स्थान मिला। ''प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए चलाए जा रहे इस अभियान से विवश होकर 1892 में 'इंडियन एक्ट' पास किया गया जिसमें भारतीयों की संख्या 9 से बढाकर 10 कर दी गई।''[2]

अन्य विषयों पर समाचार पत्रों के माध्यम से लोग जागरुक हुए जैसे- प्रेस एक्ट, इलबर्ट बिल, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, बंग-भंग के विरोध में क्रांतिकारी लेख आदि। इन विषयों पर जनता के तीव्र विरोध के बावजूद सरकार को अपनी मंशा बदलनी पड़ी। भारतमित्र, हिंदी प्रदीप, हिन्दोस्थान जैसे पत्रों ने तो बंग-भंग को रोकना तो उद्देश्य बना लिया था। फलस्वरुप सरकार को यह आदेश वापिस लेना पड़ा।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.14

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.262

पत्रकारिता के आंदोलन के कारण ही 'दादा भाई नोरौजी' को ब्रिटिश संसद में प्रतिनिधित्व मिला।

ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व के लिए पत्र-पत्रिकाओं और उनके नियमित पाठकों ने संघर्ष किया। सिविल सर्विस में भी भारतीयकरण की मांग हिंदी समाज द्वारा उठाई गई। जिसके कारण एक भारतीय और 6 यूरोपीय की नियुक्ति का आदेश दिया गया। भारतीय पत्रों के आन्दोलन के कारण ही सिविल सर्विस की परीक्षा भारत और इंग्लैंड दोनो स्थानों पर कराने का विधेयक पारित किया गया।

हिंदी में आलोचना का जन्म भी भारतेन्दु युग में हुए ऐतिहासिक विवादों के बाद हुआ। भारतेंदु ने नाटक (1881) नामक निबन्ध लिखा। इसमें भारतीय, पाश्चात्य और लोकनाट्य को मिलाकर नाटक को आधुनिक रुप देने का प्रयास किया गया। 'लाला श्री निवास दास' ने 'संयोगिता स्वयंवर' लिखकर ऐतिहासिक नाटक का श्रीगणेश किया। इस नाटक की आलोचना सर्वप्रथम बालकृष्ण भट्ट ने 'सच्ची समालोचना' और 'प्रेमघन' ने 'संयोगिता स्वयंवर और उसकी आलोचना' से की। इस प्रकार हिंदी साहित्य में विवादों की नींव पड़ी। ''यहाँ के विवादों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि न केवल आचार्य बल्कि लेखक, पाठक और आलोचक तीन बिन्दुओं से विवाद पूर्णता पाता है। जबकि संस्कृत में विवाद में ऐसी सुविधा नहीं थी। यहाँ विवाद को नया तेवर इसलिए भी मिलता है कि हर कोई अपना पक्ष रखने के लिए स्वतंत्र है, कोई बंधन नहीं है। उसका नतीजा यह हुआ है कि कई आचार्यों के बीच तो पत्रों के नौ-नौ, दस-दस, अंकों तक विवाद चलते रहे हैं।''[1]

आगे चलकर मिश्र बंधुओं के हिंदी नवरत्न में कबीर को न शामिल करने का विवाद हुआ। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास पर विवाद हुआ। द्विवेदी जी और बालमुकुन्द गुप्त के बीच 'भाषा की अनस्थिरता' संबंधी विवाद हुआ। इन विवादों में लेखक, आलोचक के साथ-साथ पाठक भी भाग लेते थे। दिलचस्प विवाद कई-कई

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.26

अंकों तक चलता था। इन विवादों में व्यक्ति विशेष पर नहीं बल्कि उसके कार्यों और नीतियों पर व्यंग्य किया जाता था। अच्छाईयों को स्वीकार किया जाता था। स्वामी दयानन्द से समकालीन लेखकों का छत्तीस का आँकडा था, परन्तु आर्य समाज के कल्याणकारी कार्यों को स्वीकारने में उन्हें किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं था। भारतेंदु ने 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' में भी इस बात को खुले दिल से स्वीकारा है। इसी प्रकार 'ब्रह्म समाज' के कार्यों का विवेकसम्मत मूल्यांकन कर उनके समाजोपयोगी कार्यों की प्रशंसा की।

भारतेंदु युग में नाटक, उपन्यास, कविता, निबन्ध, एकांकी, प्रहसन के साथ-साथ आलोचना का भी नवीनीकरण हुआ। पाठकों के सामने विभिन्न पुस्तकों पर अपनी राय देकर पुस्तक के गुण-दोष की परीक्षा की जाती थी और आग्रह किया जाता था कि वे पुस्तक पढ़े या नहीं। समीक्षकों ने लेखक और पाठक के बीच में सेतु का कार्य किया। संपादक और लेखक ही समीक्षक होते थे। हिंदी पत्रकारिता और संपादक दोनों ने एक पाठक वर्ग तैयार किया। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्ति स्वीकार, हमारी अलमारी, हमारा पुस्तकालय आदि स्तंभ होते थे, जिनमें नियमित रुप से पुस्तकों का परिचय करवाया जाता था। यही आगे चलकर पुस्तक समीक्षा के रुप में विकसित हुआ और इसी ने कई स्तरों पर पाठकों की रुचियों का संस्कार भी किया। ''युगीन परिस्थितियों की माँग ने हिंदी आलोचना को राजमहल की चारदीवारी से निकालकर नुक्कड़ पर ला खड़ा किया। एक बार साहित्य का परिवेश बदला तो दर्शक और श्रोता भी बदल गए। नयी दुनिया का पाठक ओर श्रोता तथा दर्शक कोई सामंती परिवेश का सहृदय नहीं बल्कि भारत के हिंदी प्रदेश की आम जनता थी। नये युग में साहित्यकारों ने अपना नया नया दायित्व समझा और तदनुरूप कार्य किया। यह कार्य हिंदी प्रदेश की सामान्य जनता को देश-दशा से परिचित कराने का गुरूतर भार था।''[1]

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.68

भारतेंदु काल में सबसे अधिक नाटक और निबंध लिखे गए। नाटकों का सफल संचालन मंच पर हुआ। स्वयं भारतेंदु और उनके सहयोगी उसमें अभिनय करते थे। नाटक मंडलियाँ बनी हुई थीं, जिनके द्वारा नाटक खेले जाते थे ताकि लोगों की रुचियों, को परिष्कृत करने के साथ-साथ उन्हें प्रभावित किया जा सके। स्वहित की कामना उत्पन्न की जाए। आलोचना के माध्यम से लेखकों को अपनी रचनाओं में परिष्कार करने की सलाह दी जाती थी। ''एक प्रकार से इन आलोचकों ने आलोचना में भी देश-दशा और सामाजिक स्थिति पर विचार करके सांस्कृतिक दायित्व का भी निर्वाह किया। भारतेंदु युगीन यह समालोचना, आलोचना या पुस्तक समीक्षा की सामाजिक सार्थकता को भी बढ़ाती रही है। यहाँ आलोचकों का वागविलास नहीं, बल्कि एक तरह का लेखक, पाठक, आलोचक के बीच सामंजस्य स्थापन का भाव मिलता है।''[1]

यद्यपि इस काल की रचनाओं में प्रौढ़ता का अभाव मिलता है, परन्तु पाठक और लेखक के बीच सेतु का निर्माण अवश्य हो जाता है ऐसा आभास पाया जाता है। इसी सेतु ने आगे चलकर हिंदी नवजागरण को नई दिशा प्रदान की। सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। हिंदी समाज पर इस युग के नवजागरण का प्रभाव पड़ा जो आगे चलकर विकसित रुप में सामने आया।

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.71